ज्वारभाटा

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक

देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

[पूर्व सम्पादक "सरस्वती"]

द्वितीय संशोधित संस्करण

प्रकाशक

लोक चेतना प्रकाशन

जबलपुर

अपनी बात

इस उपन्यास का कथानक युद्धकालीन विपर्यस्त विचारधाराओं की उस पृष्ठभूमि पर निर्मित किया गया है, जिसका वातावरण समाज की विडम्बनाओं गरीबो की विवशताओ, अमीरो की रगीनियो और वैभव-विलास की परस्परविरोधी झाकियों से ओतप्रोत था।

दूसरा महायुद्ध समाप्त हो जाने पर भी सन् १६४६ के अन्त तक हमारे देश की सामाजिक और राजनीतिक विषमता किसी भी सजग भारतीय से छिपी नहीं रही। राष्ट्र वही था, राष्ट्रीय नेता वही थे; किन्तु राष्ट्र के नागरिको की, समाज की और शासकीय अधिकारियों की विचारधाराएँ सर्वथा विपर्यस्त थीं। ऐसी ही विचारधाराओं का ज्वारभाटा इस उपन्यास में व्याप्त है। इस ज्वारभाटे पर बहनेवाली, किन्तु उद्बुद्ध भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करनेवाली कुमारी रेखा सामाजिक परम्पराओ को चुनौती दे डालती है और अपनी मातृभूमि के पीड़ित मानव की सेवा मे राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के पदचिन्हों पर चल पड़ती है। रेखा के स्नेही लीलाधर की विचारधारा न केवल स्वस्थ और कल्याणकारी है, प्रत्युत नवीन दिशा मे कुछ सोचने, समझने और करने की प्रेरणा भी इस उपन्यास मे दे रही है।

आज बापू हमारे बीच मे नहीं हैं, किन्तु इस उपन्यास का कथानक उनके नोआखाली जाने और हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए क्रियात्मक कदम बढ़ाने तक की उस राष्ट्रीय चेतना का प्रतिबिम्ब है, जिसके बाद हमारे राष्ट्रीय जीवन का सर्वथा नवीन अध्याय प्रारम्भ होता है—पन्द्रह अगस्त १६४७ का वह अभूतपूर्व स्वर्ण दिवस आता है, जब हम स्वतंत्र हुए। परन्तु राष्ट्रीय घटनाओं का समावेश इस उपन्यास के कथानक की परिधि से बाहर की वस्तु है। कारण, यह

उपन्यास मूलतः सामाजिक है, अतः राष्ट्रीय चेतना का इसमे उतना ही समावेश किया गया है, जितना आधुनिक युग मे समाज के प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति को प्रभावित करता है।

इस उपन्यास की रेखा और लीलाधर के विचारों का ज्वारभाटा यदि पाठकों के मनोरजन के साथ-साथ उनकी विचारधारा को तनिक भी स्वस्थ बना सका, तो मैं अपना श्रम सार्थक मानूँगा।

गान्धीयुग के पूर्व भारतीय समाज की रूढ़ियो को तोड़ फेकने अथवा शिक्षा-प्रसार की दिशा मे ही हिन्दी उपन्यासो की प्रवृत्ति प्रधानतः उल्लेखनीय रही। परन्तु गान्धीयुग मे आकर हमारे उपन्यास साहित्य ने वास्तविक कला का स्पर्श किया—उस कला का, जिसे निर्विवाद रूप से मानव के लिए कल्याणकारी स्वीकार किया जा चुका है।

आधुनिक सफल उपन्यासों मे व्यष्टि से समष्टि की ओर सकेत पाए जाते है। घटना और कुतूहल से दूर, जीवनव्यापी दैनिक समस्याओं के विश्लेषण और समाधान में आज का उपन्यासकार गहरी संवेदना और सहानुभूति का रग भर रहा है। जीवन-दर्शन आज के उपन्यास की महत्ता को कई गुना बढ़ा चुका है।

इस दृष्टि से मैं कहाँ तक सफल हो सका हूँ, इसे आप स्वयं 'ज्वारभाटा' पढ़कर देखिए। इस उपन्यास का पहला सस्करण "प्रवाह" के रूप में आशातीत सफलता का वरण कर चुका है, और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा मार्च १६५१ मे पाँच सौ रुपए से पुरस्कृत भी किया जा चुका है, अतः मुझे विश्वास है कि यह सशोधित सस्करण भी पाठकों को आकृष्ट करने मे सफल होगा।

—देवीदयाल चतुर्वेदी "मस्त"

१

बसन्त की मादक वन-श्री जब अपने-आपमे फूली नहीं समा रही थी, तब रेखा अपने मानस-क्षितिज पर मिलन-विरह के ताने-बाने मे उलझ रही थी। पृथ्वी और आकाश का मिलन-विरह जिस प्रकार सुदूर क्षितिज पर अपना एक अस्तित्व रखता है, यह रेखा नारी भी अपने मानस-क्षितिज पर किसी के मिलन-विरह का एक रगीन-सा अफसाना युग-युग से सँजोए बहती जा रही है, किसी अप्रकट प्रवाह में।

नगर के कोलाहल से दूर, घनी आबादी से दूर और शायद जीवन की चहल-पहल से भी बहुत दूर—यमुना-किनारे, एक छोटे-से घर मे अपना टिमटिमाता-सा जीवन-दीप लेकर यह रेखा इसी प्रकार उलझती रहती है अपने अतीत से। जिस प्रकार किसी सागर की लहरो पर मनोरम चन्द्रमा के आकर्षण से ज्वारभाटा अपना विशेष महत्व रखता है, ठीक इसी प्रकार रेखा के मानस-सर में भी अतीत की स्मृति-लहरो पर किसी मनचाहे, किन्तु अप्राप्य चन्द्रमा के अमिट आकर्षण से बहुधा एक ज्वारभाटा उठता-गिरता रहता है।

आज सन्ध्या समय जब उसके घर के पार्श्व में खड़े हुए ऊँचे-ऊँचे आम और नीम के वृक्षों पर पंछियों की चहचहाहट गूँज उठी, तो वह आँगन मे आकर इन्हीं पछियों को एकटक देखने लगी। सामने ही यमुना की नीली-नीली लहरों पर डूबते सूर्य की पीली किरणो का प्रतिबिम्ब भी उसने देखा। यह सब देख, वह अपने अतीत मे खो गई।

कुछ ही साल बीते होंगे, रेखा इसी प्रयाग मे अपनी बूढ़ी माँ के साथ रहती थी। एक स्कूल मे अध्यापिका थी रेखा की माँ। माँ-बेटी दोनो मजे मे रहती थीं। कभी किसी कमी का अनुभव उन्हे नहीं होता था। हाँ, पिता का अभाव अवश्य ही रेखा को खलता था। लेकिन विधाता पर किसी का वश ही क्या? रेखा जब बहुत छोटी थी, तभी उसके पिता चल बसे थे। पिता की स्मृति का एक धूमिल चित्र, रेखा की आँखो मे आज तक झूला करता है।

अपने जीवन में रेखा कभी भूल भी न सकेगी पिता का यह धूमिल चित्र। उसकी माँ ने समय-समय पर उसकी मिटती-सी स्मृतियों पर, रेखा के प्रति उनके वात्सल्य की जो कूँची फेर दी है, उसके कारण यह धूमिलता अमिट हो उठी है।

जब तक माँ अध्यापिका रहीं, रेखा को, शहर से दूर इस निर्जन यमुना-तट पर और इस कच्चे घर मे भी नहीं रहना पड़ा। शहर मे ही किराए का एक मकान ले रक्खा था, जो पक्का था और दोमजिला भी। उस मकान के आसपास का वातावरण सदा चहल-पहल से भरा रहता था। मकान के अगल-बगल दूसरे भी मकान थे, जिनमें दूसरे किराएवाले रहते थे। सभी पड़ोसी शहर मे इधर-उधर दफ़्तरों मे नौकरी करनेवाले थे। इन पड़ोसियों मे एक तिवारीजी भी थे। उनका एक लड़का था लीलाधर और एक लड़की थी लता।

लीलाधर उन दिनों कॉलेज मे पढ़ता था और लता पढ़ती थी

इसी रेखा के साथ। पड़ोसी होने के नाते दोनों परिवारों मे धीरे-धीरे घनिष्ठता हो गई। एक-दूसरे के सुख-दुख मे ये परिवार बराबर अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहे और इस प्रकार आत्मीयता की जजीर मे उत्तरोत्तर बँधते गए।

समय बीता और लीलाधर पढ-लिखकर किसी अच्छी-सी नौकरी पर प्रयाग से लखनऊ चला गया। जब तक वह प्रयाग मे रहा, रेखा ने कभी खुलकर उससे बातचीत नहीं की। यह बात नहीं कि बातचीत न करने की उसने कोई कसम खा ली थी, अथवा अन्य कोई बन्धन था। नहीं, यह सब कुछ नहीं था; बल्कि लीलाधर के सामने रेखा को छुई-मुई-सी देखकर अनेक बार रेखा की माँ ने भी यह कहा था—'इस लीलाधर से तू इतना क्यों शरमाती है, बेटी ? वह तो इसी घर का लड़का है !' लेकिन जाने क्यों, रेखा कभी खुल नहीं सकी उसके सामने। वह तो किसी तोते की तरह 'जी' अथवा 'नहीं' जैसे रटे-रटाए और अत्यन्त संक्षिप्त-से उत्तर देने की ही आदी रही। इन उत्तरों के अतिरिक्त कभी-कभी अर्द्धविदित तौर पर रेखा के ओठों पर एक मन्द मुसकराहट भी खेल जाती थी लीलाधर को देखकर। बस, इससे आगे कभी कुछ नहीं।

लेकिन जब लीलाधर लखनऊ चला गया, तब इस रेखा के मन मे अविदित तौर पर एक ऐसी आकांक्षा जागने लगी, जिसमे लीलाधर के सामीप्य का स्वप्न समाया रहता। लेकिन भारतीय कन्या की मर्यादा उसके अन्तर की कुमारी को जागरूक बनाए रही—सतर्क भी किए रही। कभी भूलकर भी उसने यह आकांक्षा किसी पर प्रकट नहीं होने दी। दो-चार बार उसकी इच्छा भी हुई लता से अपने दिल का यह रहस्य प्रकट कर देने की; परन्तु उसके अन्तर की भारतीय कन्या ने ऐसा कभी करने नहीं दिया। हाँ, इतना ज़रूर हुआ कि हफ़्ते मे दो-एक बार लता से वह लीलाधर का कुशल-समाचार पूछ

लेती थी। और, ऐसा पूछने पर जब-कभी लता कह देती कि भैया ने पत्र मे पूछा है कि रेखा प्रसन्न है न, तब रेखा की दबी आकाक्षा जैसे भीतर ही भीतर हिलोरें लेने लगती। वह एक व्यग्रता का अनुभव करने लगती और इसी व्यग्रता मे कभी-कभी कह बैठती—'लता, मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं होता।'

'तो क्या मैं तुमसे मजाक करती हूँ, रेखा !' लता एक कृत्रिम-सी तमतमाहट के आवरण मे कह देती।

'यह कोई असम्भव बात है क्या ?' रेखा जान-बूझकर इस प्रसग को बढा देने की गरज से प्रश्न कर देती।

'असम्भव तो है ही।' लता भी इन बातों मे रस लेने लगती—'लेकिन इसे सम्भव किया जा सकता है, रेखा !'

'सो कैसे ?'

'नहीं कहूँगी। शायद तुम्हे बुरा लग जाए।'

'इसमे बुरा लगने की बात ही क्या है भला ?'

'अच्छा तो सुनो।' रेखा के गुलाबी गालों पर एक हलकी-सी चपत लगाते हुए लता कह देती धीमे से—'यदि तुम मेरी भाभी हो जाओ, तो फिर मजाक करने का अधिकार भी मुझे मिल जाए।'

'हुश !' कहकर रेखा अपने गाल फुला लेती।

'मैंने कहा था न, रेखा !' लता इस रूठी रेखा को मना लेने का उपक्रम करती—'कि तुम्हे बुरा लग जाएगा।'

'नहीं, लता !' रेखा दूसरे ही क्षण शायद अपनी स्थिति प्रकट कर देती—'तुम्हारी बातों का मैं तनिक भी बुरा नहीं मानती—कभी मानूँगी भी नहीं। लेकिन जो बात कभी होने की नहीं, उसकी आशा करना निरा पागलपन है। मेरा ऐसा भाग्य नहीं, लता !' और रेखा की आँखें गीली हो जातीं।

लता इस पर तरह-तरह की सान्त्वना देने लगती। यह भी कहती

कि यदि रेखा कहे, तो वह इस मामले मे आगे बढ़कर अपनी माता से भी कभी यह प्रसग छेड़े। लेकिन रेखा ने, कभी भूलकर भी ऐसा न करने की कसम ले ली लता से। इसका कारण था : रेखा अपनी स्थिति भली-भाँति जानती थी। पिता उसके इस दुनिया मे नहीं थे। माता जो कुछ अर्थोपार्जन करती है, उसे दोनों माँ-बेटी खा-पीकर समाप्त कर देती हैं। पिता जो कुछ थोड़ा-सा संचय कर छोड़ गए थे, उसे ज़रूर रेखा की माँ ने ज्यों का त्यों सुरक्षित रख छोड़ा था। कितनी ही सकटपूर्ण घड़ियाँ आई; लेकिन उस सचित पूँजी मे से, रेखा की माँ ने कभी एक पैसा खर्च नहीं किया। वह जानती थी, भारतीय कन्या को सदा पितृ-गृह मे नहीं रखा जा सकता। उसके हाथ पीले करना ही पड़ेंगे। लेकिन यह संचित पूँजी भी इतनी नहीं थी, कि रेखा को लीलाधर के साथ अपना जीवन-सूत्र बाँध सकने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता। लीलाधर के पिता कलेक्टर के दफ़्तर मे अधीक्षक थे। लीलाधर स्वय किसी अच्छी-सी नौकरी पर लखनऊ चला गया था। ऐसी दशा मे, रेखा जानती थी कि जो पाँच-सात सौ रुपए उसके पिता किसी तरह छोड़ गए हैं, उनके बल पर अन्य किसी व्यक्ति के साथ भले ही उसका गठ-बन्धन सम्भव हो; परन्तु लीलाधर के पिता तो स्वप्न मे भी यह न होने देंगे।

यही कारण था कि रेखा ने अपनी सहेली लता से इस प्रकार की चर्चा न चलाने की कसम ले ली थी। ऐसी चर्चा छेड़कर वह अपनी माँ का मखौल नहीं उड़वाना चाहती थी। हाँ, मखौल ही उड़ाया जाता उसकी माँ का। तिवारिनजी फौरन कह देतीं—पाँच-सात सौ रुपए के बल पर मेरे बेटे को खरीदने का हौसला करती है यह मास्टरन !

हुआ यह कि समय बीतता गया और यह प्रसग रेखा के ही आग्रह से लता ने कभी भूलकर भी अपनी माँ से नहीं छेड़ा। और, एक दिन

लता ने रेखा से कहा—'रेखा, भैया के विवाह की बात चल रही है कानपुर में।'

'बड़ा घर होगा?' रेखा ने प्रश्न किया।

'हाँ, सिविल-सर्जन की लड़की है।' लता ने कहा।

'होना ही चाहिए।' रेखा ने अपने अन्तर की सारी अकुलाहट दबाते हुए कहा—'तुम्हारे भैया के लिए ऐसी ही ससुराल मिलनी चाहिए, लता! वह स्वयं इतने योग्य हैं, और तुम्हारा घर भी क्या किसी सिविल-सर्जन की हैसियत से कम है?' और एक क्षण रुककर उसने फिर कहा—'यही कारण था लता, मैंने तुमसे कसम ले ली थी कि मेरी चर्चा भूलकर भी न करना अपनी माँ से।'

लता सकपकायी मन ही मन। लगा कि इस रेखा को कहीं कोई भ्रम हो गया है क्या? सो कहा उसने फौरन—'विश्वास करो रेखा, मैंने शपथ की रक्षा बराबर की है। यद्यपि कानपुर की बात जब बाबू जी अम्मा से कह रहे थे, तब मेरे मन मे आया कि तुम्हारी बात मैं कह दूँ; लेकिन तुम्हारी शपथ का ध्यान मुझे आ गया और मैं चुप रही। हाँ, तुम कहो तो अब भी मैं यह चर्चा छेड़ सकती हूँ, रेखा? और भैया तो तुम्हारा प्रस्ताव सुनकर प्रसन्न ही होंगे।'

'सो तो मैं जानती हूँ, लता।' रेखा ने अपनी स्थिति का ध्यान रखते हुए भी एक आलोचक बनकर कहा—'लेकिन मैं जिस स्तर पर हूँ, उसे ऊँचा उठाने की उदारता अभी हमारे समाज मे नहीं है। निकट भविष्य मे भी भारतीय समाज से इस उदारता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। गान्धी-युग मे रहकर और गान्धी का नेतृत्व पाकर भी जब हमारा भारतीय समाज जागरूक नहीं हो सका, तब आगे उससे ऐसी आशा करना व्यर्थ है।'

'कुछ अशों तक तुम्हारी बात से मैं सहमत हूँ, रेखा।' लता ने कहा—'लेकिन आगे की—भविष्य की जो बात तुम कह रही हो,

उसे मैं नहीं मानती। इतिहास इस बात का साक्षी है कि गौतम बुद्ध, ईसा आदि के जीवित रहते, उनके जिन सिद्धान्तों का सम्मान नहीं हुआ, भविष्य मे वही सिद्धान्त युगधर्म बनकर आज सदियाँ बीत जाने पर भी इस दुनिया मे अपना अस्तित्व रखते हैं।'

'अच्छा है, लता!' रेखा ने अपनी मार्मिकता व्यक्त करते हुए कहा—'मुझ-जैसी कन्याओं को आर्थिक स्तर से ऊपर उठाने की उदारता यदि भारतीय समाज आगे चलकर भी कभी प्रदर्शित कर सका, तो इस देश का नारी-समाज अपने अगणित बलिदानों को सार्थक समझेगा।'

और, इसके बाद ही रेखा ने अपनी आँखों देखा था लीलाधर का विवाह। वह सम्मिलित भी हुई थी उस विवाह मे। उस परिवार से घनिष्ठता होने के नाते उसे सम्मिलित होना पड़ा था। वह चाहती नहीं थी कि इस विवाह मे वह लीलाधर के घर जाए; लेकिन लता उसे खींचकर ले गई थी। परन्तु विवाहोत्सव की शहनाई के स्वर उसके अन्तस्तल को जैसे छिन्न-भिन्न करने मे ही सहायक हुए थे। इस बीच मे जब कभी लीलाधर की दृष्टि रेखा पर पड़ती, तब एक अस्फुट-सी मुसकान—पहले की तरह—उसके ओठो से फूट पड़ना चाहती। लेकिन अन्य नर-नारियों को उपस्थिति के भय से ऐसा कभी हो नहीं सका। स्पष्ट रूप से रेखा की मुद्रा पर छायी रहनेवाली उदासी को लीलाधर ने देखा; लेकिन वह समझ कुछ नहीं सका। समझने के लिए उसके पास था ही क्या?

विवाह के एक सप्ताह बाद ही लीलाधर अपनी नौकरी पर पुनः चला गया। इतना वक्त ही नहीं मिला कि कभी एकाध बात रेखा से वह कर सकता। एक सप्ताह वह रहा जरूर; लेकिन नव-बधू के रास-रंग से जो थोड़ा-बहुत समय उसे मिलता था, वह विवाह के सिलसिले मे आए हुए नाते-रिश्तेदारों से मिलने-जुलने मे ही बीत जाता था।

•

और इस घटना के बाद तो जैसे रेखा के जीवन मे क्षिप्र गति से उलट-फेर होते गए। लीलाधर के विवाह के दो महीने बाद ही उसका परिवार गोरखपुर चला गया। लता के पिता का स्थानान्तर हो गया। अब रेखा का समय काटे नहीं कटता था। लीलाधर को लेकर जहाँ वह उलझती रहती थी, वहीं अब लता की सारी बातें और भी अधिक उलझाए रहतीं। वह मन-ही-मन घुलती रहती और उदास बनी रहती। बूढी माँ ने दो-एक बार इस उदासी का कारण भी पूछा; लेकिन रेखा भला, क्या कहती ? फिर भी कुछ-न-कुछ तो उसे कहना ही पड़ा, सो कह दिया—'लता की याद आती है, माँ।'

माँ इससे अधिक समझ ही क्या सकती थी ? लीलाधर के संबंध मे रेखा के अभिभूत रहने की तो वह कभी कल्पना ही नहीं कर सकती थी।

इसी बीच मे रेखा की माँ बीमार पड़ गई। पेट मे एक फोड़ा हो गया। स्कूल से छुट्टी लेनी पड़ी। बहुत उपचार किया गया, लेकिन फोड़ा था कि बढ़ता ही गया। अन्त मे आपरेशन भी किया गया; लेकिन बूढे शरीर ने जवाब दे दिया। आपरेशन के दो दिन बाद रेखा को सर्वथा अकेली छोड़, वह चल बसी।

रेखा का जीवन अन्धकारमय हो उठा। आगे-पीछे कोई नहीं रहा, जो उसकी देख-भाल करता, उसे धीरज बँधाता अथवा अपनी छाया में सिसकियाँ भरने का मौका देता। रेखा दसवें दर्जे में पढ़ रही थी। माँ के निधन से वह बहुत दुःखी हुई। लेकिन अपने जीवन को वह मटियामेट नहीं करना चाहती थी। आँसुओं की धारा के बीच भी उसने अपना अध्ययन जारी रखा और प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण भी हो गई।

जिस स्कूल मे उसकी माँ अध्यापिका थी, उसी स्कूल मे उसे भी अध्यापिका का स्थान देकर, स्कूल-कमेटी ने उसके साथ यथेष्ट उदा-

रता दिखलाई। रेखा की अस्तव्यस्त-सी जीवन-नैया एक बार जोरों से डगमगाकर जैसे फिर व्यवस्थित हो गई। लेकिन उसके अन्तर की नारी अब भी सुखी नहीं थी। लीलाधर की याद उसके मानस-क्षितिज पर सदा बनी रहती। भारतीय समाज की अनुदारता उसे सदा बेचैन किए रहती। फिर भी स्कूल की छात्राओं के साथ वह अपना समय हँस-खेलकर बिताने की आदी बनने लगी। धीरे-धीरे लता और उसके भाई लीलाधर की स्मृति धूमिल होने लगी।

समाज की अनुदारता का तीखा घूँट पीते-पीते वह छक चुकी थी। उसने अपनी तरुणाई के ज्वार को कभी बढ़ने नहीं दिया। अपने आर्थिक स्तर की बात सोच-समझकर वह तरुणाई की उमंगों को दबाते रहने की आदी होती गई। उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि वह अब किसी पुरुष की छाया भी नहीं चाहती। जिस समाज मे मानव के रूप-रग और गुण का सम्मान नहीं, प्रत्युत आर्थिक स्तर को देखकर ही उसका मोल-तोल किया जाता है, उस समाज मे रहकर वह अपने व्यक्तित्व को आखिर बेचे क्यों?

इसी तरह रेखा के दिन कट रहे थे कि एक दिन मकर सक्रान्ति के पर्व पर, जब वह त्रिवेणी-स्नान करने, नाव पर बैठने जा रही थी, तब अचानक एक नारी ने घाट पर ही उसे सम्बोधित कर कहा—'रेखा!'

पीछे मुड़कर रेखा ने देखा, तो एक क्षण असमंजस में पड़ गई, पहचान नहीं सकी उस नारी को।

'मुझे पहचाना नहीं रेखा!' पास आकर उसी नारी ने कहा—'लता को भूल गई?'

रेखा अपने-आप एक खीझ से भर उठी। कहा—'माफ़ करना बहिन! सचमुच नहीं पहचान सकी।'

और इसके बाद ही लता ने अपने साथवालों का परिचय देते हुए कहा—'यह भैया हैं और यह भाभी।'

लीलाधर के ओठों पर वही पहले-जैसी एक मुसकराहट दौड़ गई। कहा—'सब ठीक तो है, रेखा ?'

'जी !' रेखा ने भी पहले की तरह ही रटा-रटाया-सा उत्तर दे दिया। लेकिन रेखा के ओठों पर मुसकान नहीं थी। वह कैसे कहे कि तुम पुरुष शायद नारी के अन्तस्तल को कभी न पहचान सकोगे !

'माताजी अच्छी है ?' दूसरा प्रश्न किया लीलाधर ने।

रेखा की आँखों मे आँसुओं की बूँदें छलक उठीं। शायद लीलाधर और लता दोनों समझ गए। लता ने कहा—'बुढ़ापा था उनका, रेखा ! क्या हुआ था उन्हे ?'

'पेट मे फोड़ा।' रेखा ने एक रूमाल से अपनी गीली आँखें पोंछते हुए कहा।

'तुम कहाँ हो आजकल ?' लीलाधर ने पूछा।

'वह देखिए !' रेखा ने संकेत से यमुना-तट पर खड़े एक कच्चे मकान को लक्ष्य कर कहा—'उसी मकान मे रहती हूँ मैं। कैसे कहूँ कि आप सब मेले से लौटकर मेरे ही मकान मे ठहरें ! वह आप लोगों के लायक नहीं। और मैं भी आप सबका स्वागत कर सकने के लायक नहीं। एक स्कूल की साधारण-सी पाठिका हूँ मैं—ठीक अपनी ग़रीब माँ की तरह !'

'यह सब तुम क्या कह रही हो, रेखा !' लता ने रेखा की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—'इतना दुराव हम लोगों के प्रति कब से आ गया तुममे बहिन ?'

और रेखा को जैसे अब होश आया कि वह सचमुच क्या-क्या कह बैठी है ? यह सब कहने की जरूरत ही क्या थी ? अपना दोष स्वीकार करते हुए वह चुप रही।

'हम लोग लौटकर ज़रूर आएँगे तुम्हारे यहाँ, रेखा !' लता ने कहा—'अच्छा, चलो चले।'

'नहीं, मैं त्रिवेणी नहीं जाऊँगी।' रेखा ने कहा।

'क्यों, हम लोग मिल गए इसलिए?' यह लीलाधर का स्वर था—'हाथ में जो झोला है, वह साफ़ बतला रहा है कि तुम त्रिवेणी नहाने जा रही थीं।'

रेखा लज्जित हो गई। वह स्वयं नहीं समझ सकी कि आज यह सब अस्तव्यस्तता क्यों उससे खिलवाड कर रही है। और इसी अस्तव्यस्तता मे उसने सफलतापूर्वक अभिनय करते हुए कहा—'आप लोगों के मिल जाने से तो मुझे खुशी ही हुई। लेकिन त्रिवेणी न जाने की बात जो मैं कह रही हूँ, वह इसलिए कि मेरे साथ स्कूल की और भी अध्यापिकाएँ जाएँगी। स्कूल की लड़कियाँ भी रहेंगी। उन सबके लिए मुझे अभी ठहरना होगा। काफ़ी विलब हो जाएगा।'

'तब हम लोग चलें।' लता की भाभी ने कहा—'फिर शाम को इनसे मिल लेंगे।'

'हाँ, रेखा!' लता ने कहा—'यही ठीक होगा। भाभी को यहाँ के कई स्थान भी दिखलाना हैं।'

और, रेखा देखती रही कि लीलाधर अपने परिवार के साथ नाव पर बैठकर त्रिवेणी की तरफ़ चल पड़ा। जब नाव जमुना-पुल के उस ओर निकल गई, तब रेखा को लगा कि वह भी कितनी अव्यावहारिक है। न तो लता का कहना उसने माना, न लीलाधर का। फिर, जाते समय यह भी न कह सकी कि शाम को आप लोग जरूर आइ-एगा। उलटे उसने यह कहकर उन लोगों को शायद क्लेश ही पहुँ-चाया कि मैं आप सबका स्वागत करने के लायक नहीं...मेरा मकान आप लोगों के लायक नहीं।

इन्हीं बातों को लेकर रेखा उलझती रही और वहीं घाट पर बहुत

देर तक खड़ी रही। उस दिन फिर वह त्रिवेणी नहीं जा सकी। यमुना में ही स्नान कर अपने घर वापस चली आई।

सन्ध्या समय उसने बहुत प्रतीक्षा की लता और लीलाधर की। लेकिन पता नहीं, वे लोग क्यों नहीं आए? शायद उन्हे रेखा के व्यवहार से चोट पहुँची हो!

इस घटना को बीते आज एक महीना हो चुका; लेकिन रेखा है कि उस दिन के अपने अभद्र व्यवहार पर मन-ही-मन एक खीझ से भर-भर उठती है। जिसकी मधुर कल्पना-मात्र से वह आत्मविभोर हो उठती है; जिसके मिलन-विरह का एक अप्रकट-सा काल्पनिक रंगीन अफ़साना युग-युग से सँजोए बहती जा रही है जीवन-प्रवाह मे, उसे अपने घर मे भी उसने नहीं आने दिया। इस अवज्ञा की भी कोई सीमा है!

रेखा यही सब सोच रही है और देख रही है यमुना की नीली लहरों पर डूबते सूर्य की पीली किरणों का प्रतिबिम्ब। ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर रैनबसेरा करनेवाले पक्षी शोरों से चहचहा रहे हैं; लेकिन रेखा है कि अपने ही विचारों में खोयी-सी, ठगी-सी और उलझी-सी खड़ी है मौन।

२

त्रिवेणी-स्नान की अदम्य आकाक्षाओं को अपने-अपने हृदय-मन्दिर मे सँजोए, अगणित नर-नारी नावों पर बैठे हुए, त्रिवेणी की तरफ बढे जा रहे थे। यमुना की नीली-नीली अगम जलराशि पर सरकती हुई इन नावों की गिनती कर सकना आसान नहीं था।

भारत के धर्मप्राण निवासियों की धार्मिकता का साकार रूप इन नावो पर दर्शनीय था। मकर संक्राति का पर्व जो ठहरा! इन यात्रियों को न ठण्ड का भय, न कोहरे की आशंका। जो सम्पन्न थे, वे ऊनी शाल-दुशालों से अपने शरीर की रक्षा कर रहे थे। जो साधारण स्थिति के थे, वे मामूली-से कम्बलो मे दुबके हुए थे। और जो एकदम गरीब थे, वे अपने कॉपते हुए शरीर को मात्र अपनी धार्मिकता के आवरण मे शायद इतना गर्म अनुभव कर रहे थे कि उन्हे शीत की भयंकरता व्याप नहीं रही थी।

और. प्रकृति जैसे यह निश्चय कर चुकी थी कि इस पर्व पर इन यात्रियों की पूरी-पूरी परीक्षा ली जाए। कदाचित् इसीलिए निर्मम होकर वह अपनी भयंकरता प्रकट कर रही थी। आसमान में बादल इतनी सघनता से छाए हुए थे कि सूर्य-किरणें दस बज चुकने पर भी

इन मेघ-दलों को विदीर्ण करने में असमर्थ थीं। कोहरा इतना छाया हुआ था कि सौ-पचास गज से अधिक दूर की वस्तु देखने का प्रयत्न करना व्यर्थ था।

प्रयाग के मौसम की भी एक विशेषता है। यों यहाँ बरसात में भी पानी न गिरेगा, और इतनी गरमी महसूस होगी कि खुली छतों पर भी पखा झलने की आपको ज़रूरत पड़ेगी; लेकिन माघ-मेले के अवसर पर जितने भी पर्व पड़ेंगे, प्रायः सभी मे कोहरा और बदली का ऐसा समाँ बँधेगा कि यात्रियों को लेने-के-देने पड़ जाएँगे। लेकिन यात्रियों की धार्मिक भावनाएँ भी कुछ ऐसी विकट होती हैं कि वे इस प्रतिकूल मौसम की रत्ती भर परवा नहीं करते। कितने ही यात्री अपने नन्हे-नन्हे लालों को भी ऐसे ही प्रतिकूल मौसम मे बराबर त्रिवेणी-स्नान कराते और स्वय को धन्य समझते हैं। और ऐसे कोहरे मे, ऐसी बदली मे और तीर की तरह चलनेवाली हवा के झोंकों में किसी का कुछ बिगड़ता भी नहीं। कदाचित् यही कारण है कि गंगा की महिमा पर लोगों की अटल आस्था है; उसकी दैवी शक्ति पर लोगों का अगाध विश्वास है और इसीलिए उसे पाप-ताप-हारिणी, पतित-पावनी एवं मोक्षदायिनी माना गया है।

यमुना के वक्षःस्थल पर सरकती हुई नावों को लीलाधर चुपचाप देख रहा था। किसी नाव पर यात्री गंगा-महिमा के भजन गा रहे थे, तो किसी पर गंगा की देन की कहानियाँ कही जा रही थीं। लीलाधर की बहिन लता अपनी भाभी से बातचीत कर रही थी और तटवर्ती किले की ओर संकेत से उसे कुछ दिखला रही थी।

लीलाधर के लिए यह दृश्य नवीन नहीं था। वह अपने पिता के साथ अनेक वर्ष इसी प्रयाग मे रह चुका है। यहीं उसकी शिक्षा-दीक्षा हुई है। इन यात्रियों की धार्मिकता पर भी वह

आश्चर्यचकित नहीं हुआ। वह ठहरा नवीन रोशनी मे पला हुआ एक तरुण। उसकी दृष्टि मे भारत की यह अन्धानुभक्ति और धर्म-परायणता शायद कोई महत्व नहीं रखती।

लेकिन लीलाधर को काफ़ी देर तक यों मौन देखकर उसकी पत्नी ने यही समझा कि यात्रियों की यह भीडभाड और धार्मिकता की यह रेलपेल ही उसे प्रभावित कर रही है। इसीलिए उसने अपनी ननँद—लता—से कहा—'मालूम पड़ता है, तुम्हारे भैया को यह दृश्य बेहद प्रभावित कर रहा है !'

'नहीं भाभी।' लता ने कहा—'उन्हे यह दृश्य क्या प्रभावित करेगा ? वे तो यहीं रह चुके है सालों। हॉ, तुम्हे यह सब दृश्य सच-मुच प्रभावित कर रहा होगा।'

लीलाधर का ध्यान इस सम्भाषण की ओर अनायास ही आकृष्ट हो गया। कहा उसने—'हॉ, लता। तुम्हारी भाभी के लिए तो यह दृश्य एकदम नवीन होना चाहिए।'

'लेकिन मैं देख रही हूँ कि मुझसे कहीं अधिक प्रभावित आप स्वय हो रहे है।'

'तो क्या मौन रहने का अर्थ प्रभावित होना ही कहा जाएगा ?'

'भैया !' लता ने बीच मे ही टोक दिया—'भाभी का कहना बहुत कुछ ठीक है।'

'क्यों नहीं।' लीलाधर ने कहा—'तुम अपनी भाभी का पक्ष न न लोगी, तो और करोगी क्या ?'

'इसमे पक्ष लेने की बात ही क्या है ?' लता की भाभी ने कहा—'जो सच बात होगी, उसका समर्थन हर कोई करेगा। और, पक्ष तो लता बेटी, आपका ही ले रही है। वह पहले ही कह चुकी हैं कि आपको यह दृश्य प्रभावित नहीं कर सकता।'

'ओह ! यह बात है।' लीलाधर को जैसे अब अपने मौन पर

क्षोभ हुआ। शायद अपनी गलती भी उसे मालूम हो गई—'यह सब मैंने सुना नहीं था लता, इसीलिए पक्ष लेने की बात कह डाली।'

'इसीलिए तो भैया,' लता ने कहा—'भाभी का कहना बहुत कुछ ठीक कहा जा सकता है। आखिर आप इतना मौन रहकर सोच क्या रहे है आज?'

लीलाधर अब धर्मसंकट मे पड़ गया। सचमुच इतना मौन रहकर उसने भूल की है। यदि वह इतनी देर मौन न रहता, तो लता को यह प्रश्न करने का मौका ही कहाँ मिलता? और उसने अब जो यह प्रश्न कर दिया है, इसका उत्तर वह क्या दे? वह कैसे कहे कि जमुना-पुल के उस पार—गौ घाट पर—रेखा नाम की जिस नारी को वह अभी-अभी छोड़ आया है, वही है इस मौन का कारण।

लीलाधर का अन्तस्तल जानता है इस रेखा की आत्मीयता को, जो अनायास ही उसकी ओर आकृष्ट हो उठी थी। यह भी तो उसे पता लग चुका है कि रेखा मन-ही-मन पूजा करती थी उसकी। और यह भी उससे छिपा नहीं रह सका कि सजातीय होने के नाते रेखा ने आशा के इस सुनहरे तार से स्वयं को बाँध रक्खा था कि लीलाधर के चरणों पर वह अपना सर्वस्व अर्पित कर सकेगी। लेकिन यह सब हो नहीं सका। और, न हो सकने का कारण सिर्फ यही है कि रेखा का यह आकर्षण इतना एकागी और अप्रकट रहा कि लीलाधर समय रहते बखूबी समझ भी तो नहीं सका। वस्तुस्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान तो उसे तब हुआ, जब हाट लुट चुकी थी।

अलका के साथ जब लीलाधर का परिणय हो चुका, जीवन-सूत्र सदा के लिए सम्बद्ध हो चुका, तब कहीं पता चला था लीलाधर को इस सबका। और, इस स्तर पर पहुँचकर अलका के प्रति तनिक भी गैरईमानदार होना लीलाधर के लिए सम्भव नहीं था।

किसी नारी की निश्छल पूजा का वह आदर करता है। और, यह

पूजा जब दो-दो नारियों द्वारा की जाने लगे, तब तो देवता की स्थिति अत्यन्त नाज़ुक हो उठती है। वह किसे प्रसन्न रखे और किसे अप्रसन्न? लेकिन लीलाधर का यह विश्वास है कि जिस अलका के हाथ उसके साथ पीले किए गए है, वही उसका वरदान पाने की एकमात्र अधिकारिणी है।

हाँ, रेखा की पूजा का भी वह निरादर नहीं करना चाहता। अपनी सहानुभूति और शालीनता से वह उसे वञ्चित नहीं रखना चाहता। लेकिन अभी-अभी जो कुछ हो गया है, उससे तो रेखा को बहुत गहरी चोट लगी होगी। आखिर ऐसी कोई बात भी तो लीलाधर नही कर सका, जिससे उसे यह विश्वास हो जाता कि देवता समझकर जिसकी वह कभी पूजा कर चुकी है, वह भी उसके प्रति अपने हृदय मे सहानुभूति और शालीनता का स्रोत सजोए हुए है। कदाचित् यही कारण है कि रेखा इन सबके साथ त्रिवेणी-स्नान करने नहीं आई।

परन्तु अपनी पत्नी अलका और बहिन लता की उपस्थिति मे भला, लीलाधर यह सब प्रकट कैसे करता? वह कैसे उसे अपना हृदय दिखला सकता था कि ओ रेखा, तू मेरे लिए उसी तरह पूज्य है, जिस तरह तू मेरी पूजा कर चुकी है।

यही सब बाते थीं, जिनकी उधेड़बुन मे लीलाधर इतना उलझ गया कि लता और अलका ने उसे छेड़ ही दिया। अब वह क्या उत्तर दे, यह एक पहेली थी। फिर भी कुछ तो उसे कहना ही था, सो कह दिया—'लता, मैं सोच रहा हूँ कि एक दिन इसी प्रयाग मे रहते थे हम लोग। यहीं हम पढ़ते थे, यहीं खेलते थे और यहीं... ...।' कहते-कहते वह जान-बूझकर रुक गया। अन्तःकरण की बात अनायास ही प्रकट हुई जा रही थी, सो सयमपूर्वक उसे रुक जाना पड़ा।

'और यहीं मौज उड़ाते थे।' कह दिया अलका ने।

'हाँ, भाभी!' लता ने अपनी भाभी का समर्थन किया—'इसमे कोई अत्युक्ति नहीं है। यह स्वाभाविक ही था।'

लीलाधर को आशंका होने लगी कि यह लता कहीं और कुछ न कह डाले इसी सिलसिले मे, सो उसने बीच मे ही टोक दिया—'यह तो होता ही है, लता! तुम्हारी भाभी का भी क्या यही हाल न रहा होगा अपने मायके मे! यह भी मौज उडाती रही होगी अपने पिता के घर।'

'मै इससे कब इनकार करती हूँ।' अलका ने कहा—'लेकिन मैं उसके लिए अब दुखी नहीं। कारण, आज भी तो आप सबके साथ मैं मौज उडा रही हूँ। लेकिन आपकी स्थिति शायद मुझसे भिन्न है।'

सरल-सहज अलका की यह निश्छल बात बहुत भली लगी लीलाधर को। लेकिन अन्तिम वाक्याश कुछ बोझिल-सा लगा उसे। इसीलिए कहा उसने—'स्थिति का जहाँ तक सम्बन्ध है, आशिक भिन्नता से मैं इनकार नहीं कर सकता। पुरुष और नारी का क्षेत्र जो ठहरा—कुछ-न-कुछ भिन्नता तो रहेगी ही, अलका।'

अब तक इनकी नौका त्रिवेणी के काफ़ी निकट पहुँच चुकी थी। 'हर-हर गगे' के नारे अनायास ही कानो मे प्रवेश करने लगे थे।

लता ने यह प्रसग बदलते हुए कहा—'अच्छा, भैया, छोड़िए इन बातों को। भाभी को अब त्रिवेणी-तट का दृश्य देखने दीजिए। ये बाते तो फिर भी होती रहेगी।'

'अरे हाँ, यह तो मैं एकदम भूल गया लता कि तुम्हारी भाभी के लिए यहाँ का प्रत्येक स्थान और दृश्य नया है।' लीलाधर ने कहा—'मुझे इनसे माफी माँगनी चाहिए।'

'माफी किस बात की?' लता ने पूछा।

'त्रिवेणी-तट पर लोग अपने पाप धोने आते है, और यह हैं कि पत्नी से माफ़ी माँगकर शायद........।' कहते-कहते अलका रुक गई।

'अपने पापों को बोझिल कर रहे है।' लीलाधर ने अपनी पत्नी का अधूरा वाक्य पूरा कर दिया। फिर कैफियत देते हुए कहा—'लेकिन एक बात तुम भूल रही हो, अलका ! मैं यहाँ रहकर पहले ही इतने त्रिवेणी-स्नान कर चुका हूँ कि अब इस जीवन मे कोई पाप मेरे पल्ले बँध नहीं सकेगा।' और मुसकराहट दौड़ गई लीलाधर के ओठों पर।

'लेकिन यह तो आपने अभी तक न बतलाया, भैया !' लता ने पूछा—'कि यह माफी आखिर किस बात की माँग रहे थे ?'

'इस बात की लता, कि नाव पर बैठे-बैठे हम उस महान् ऐतिहासिक किले को पीछे ही छोड़ आए और तुम्हारी भाभी को उसके सम्बन्ध मे एक शब्द भी न बतला सके।'

'आप चिन्ता न करे !' अलका ने कहा—'थोडा-बहुत मैं जान चुकी हूँ उसके सम्बन्ध मे। लता बेटी ने मुझे अभी-अभी बतलाया था कि यह किला महाराज अशोक के समय का है। लेकिन इसका वर्त्तमान रूप मुगल सम्राट् अकबर के समय मे तैयार हुआ था। और इसीके भीतर है हिन्दुओ का वह वट-वृक्ष, जिसके दर्शन कर हम लोग कृतकृत्य हो जाते हैं—सदियाँ बीत जाने पर भी जो अपना अमिट अस्तित्त्व रखता है और जिसके आसपास अनेक हिन्दू देवी-देवताओ की भव्य मूर्त्तियाँ आज तक हम लोगो के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है।'

नाव अब तक किनारे लग चुकी थी। मल्लाह को पैसे देकर लीलाधर अपने परिवार के साथ नाव से उतर पडा। अलका से उसने कहा—'अच्छा, अब हम त्रिवेणी-स्नान कर ले, फिर किले मे चलकर वट-वृक्ष और मूर्त्तियों के दर्शन करेंगे।'

त्रिवेणी-स्नान कर चुकने पर अलका ने अपनी ननँद लता के साथ गंगा को फूल और दूध चढ़ाया। इसके बाद लता ने लीलाधर से

कहा—'भैया, गंगाजी को जब तक सवा सेर पेडे नहीं चढ़ाए जाएँगे, तब तक भाभी को त्रिवेणी-स्नान का पूरा-पूरा फल नहीं मिलेगा।'

'सो क्यो ?' अलका ने एक जिज्ञासु की तरह पूछा।

'जब हम लोग यहीं रहते थे, भाभी।' लता ने कहा—'तब हमारी माताजी यही कहा करती थीं। वे सदा गगाजी को पेडे चढ़ाया करती थीं।'

'तब तो हमे भी पेडे अवश्य चढ़ाना चाहिए।' अलका ने लीलाधर की तरफ देखते हुए कहा।

'हाँ, जरूर चढाओ और कोई वरदान भी मॉगना हो तो....।'

'वह तो मॉगा ही जाएगा, भैया!' लता ने बीच मे ही टोक दिया—'आप पेडे तो लाइए पहले।'

लीलाधर ने वहीं पास की एक दूकान से सवा सेर पेडे खरीदे और अलका ने भक्ति-भाव से गगाजी को प्रसाद चढ़ाया। कुछ पेडे वही खड़े भिखमगो को बॉट दिए और शेष पेडे सहेजकर एक रूमाल मे बॉधकर रख लिए।

इसके बाद एक हलवाई की दूकान मे जाकर पेट-पूजा की, और तब मेले मे घूमने का सिलसिला जारी हुआ। दूर-दूर से आई हुई दूकानों को देखते और कुछ वस्तुएँ खरीदते हुए ये लोग जब किले मे प्रविष्ट हुए, तब सन्ध्या के पॉच बज रहे थे। वट-वृक्ष और मूर्त्तियो का दर्शन करते-करते किले मे ही अँधेरा होने लगा।

किले से बाहर आकर लता ने कहा—'भैया, अब हमे रेखा के यहॉ चलना है न ?'

'रेखा!' लीलाधर ने मन-ही-मन दोहराया। उसे स्मरण आया कि सबेरे गौ-घाट पर रेखा से सचमुच यह कहा गया था कि शाम को हम लोग आएँगे। कलाई पर बँधी सुनहरी घड़ी पर लीलाधर की दृष्टि जा अटकी। साढ़े छः बज रहा था। सिर्फ एक घण्टा था

गोरखपुर के लिए गाड़ी छूटने का। लीलाधर को भीतर-ही-भीतर एक धक्का लगा। रेखा से पुनः मिलने की तीव्र लालसा उसके अन्तस्तल मे पुनः एक बार उथल-पुथल मचाने लगी। लेकिन समय की कमी को महसूस करते हुए उसने इस लालसा को दबाते हुए कहा—'हाँ, लता! चलना तो जरूर था, लेकिन गोरखपुर की गाडी छूटने मे सिर्फ एक घण्टा रह गया है।'

'तब रेखा के पास चलने का विचार हमे छोडना ही पडेगा, भैया,' लता ने कहा—'हॉ, गोरखपुर न चलना होता, तो बात दूसरी थी।'

'यही तो मैं सोच रहा हूँ, लता!' लीलाधर ने असमजस के आवरण मे कहा—'पिताजी को यदि पत्र न भेज चुका होता तो, यहॉ एकाध दिन रुक भी सकते थे हम। लेकिन अब यह सम्भव नहीं। फिर कभी देखा जाएगा।'

'लेकिन वह बेचारी राह देखेगी।' लता ने कहा।

'और पिताजी क्या राह नहीं देखेंगे गोरखपुर मे?' लीलाधर ने कहा—'फिर छुट्टी भी तो नहीं है इतनी कि एकाध दिन कहीं अधिक रुक सके हम लोग।'

और एक तॉगे पर जाकर लीलाधर अपनी बहिन और पत्नी के साथ बैठ गया। तागेवाले से कहा—'इलाहाबाद स्टेशन चलो।'

मेले की भीड़भाड़ मे टुन-टुन टुन-टुन करता तागा अपना पथ पार करने लगा। लगभग एक मील तक इस भीड़-भाड़ मे टुनटुनाते हुए चलने के बाद हवा से बाते करने लगा यह तागा। स्टेशन पर पहुँच कर तागेवाले को लीलाधर ने डेढ़ रुपया दिया और सेकण्ड क्लास के तीन टिकट खरीदे और गोरखपुर जानेवाली गाड़ी मे जाकर वह सपरिवार बैठ गया।

पन्द्रह मिनट से अधिक इन लोगों को नहीं बैठना पड़ा कि गाड़ी खुल गई।

लता और अलका दोनों, आपस मे इधर-उधर की बातचीत करती जा रही थीं, लेकिन लीलाधर एकदम मौन था। उसके अन्तर मे रह-रहकर रेखा की स्मृतियाँ ही आलोड़ित हो रही थी। उसे लग रहा था कि रेखा क्या कहती होगी आज ? वचन देकर भी आज मैं उसके पास न जा सका। प्रयाग मे जब तक रहा, कभी उससे खुलकर कोई बात नहीं कर सका, और आज जब इतने दिनों के बाद उससे अचानक भेंट हुई, तो उसके प्रति आत्मीयता के दो बोल भी मेरी वाणी से न फूट सके। सन्ध्या समय बेचारी रेखा राह देखती रही होगी हम लोगों की। लेकिन हम लोग हैं कि दिन भर का समय मेले मे ही खत्म कर दिया। यह भी सुधि न रही कि किसी को कोई वचन दिया है और उसे पूरा करना है। पश्चात्ताप से लीलाधर का हृदय भर-भर उठता था। अपनी विवशता पर आज वह रह-रहकर लज्जित हो रहा था और रेखा के प्रति अपनी इस उदासीनता के लिए स्वयं को रह-रहकर धिक्कार रहा था।

३

अपने माता-पिता के पास आकर पहले कभी लीलाधर को इतनी आन्तरिक उलझन का सामना नहीं करना पड़ा। फिर आज यह सब क्यों? उसने स्वीकार किया कि कदाचित् दो कारण हैं : एक तो यह कि कल प्रयाग से यहाँ आते समय वह रेखा से मिल नहीं सका—उसे वचन देकर भी वह माघ मेले से सीधा स्टेशन चला गया। पत्नी अलका तथा बहिन लता के साथ, उस रेखा नारी के पास शायद वह जाना भी नहीं चाहता था। यह भावना प्रयाग से चलते समय तक उसके मन में थी ही नहीं। अब यहाँ आकर, मन के ऊहापोह पर तिरकर ही इस शायद का समावेश हुआ है। लेकिन समय भी तो नहीं था। वह विवश था। और, दूसरा कारण उसकी इस उलझन का यह था कि यहाँ आकर वह अपने को एकदम एकाकी अनुभव कर रहा है। अलका और लता दोनों ही उसके निकट छाया की तरह नहीं है। वे तो भीतर हैं—लीलाधर की माँ से ही जाने क्या-क्या बातें कर रही हैं—इतनी लम्बी-चौड़ी कि शायद दिन समाप्त हो जाने पर भी पूरी न हो सकेगी।

दस बजे तक तो वह अपने पिता से इधर-उधर की बातें करता रहा। लेकिन पिताजी जब दफ़्तर चले गए, तब लीलाधर क्या करता? गोरखपुर लीलाधर के लिए एकदम नया स्थान है। पिताजी का तबादला जब से यहाँ हुआ है, आज पहली ही बार लीलाधर यहाँ आया है। प्रयाग मे पिताजी होते, तो लीलाधर को एक दिन क्या, एक मास का समय भी एक क्षण-जैसा लगता। लेकिन इस परिचय-हीन स्थान मे वह कहाँ जाए, किससे मिले? यही कारण था कि वह अपनी ही आन्तरिक उलझनो मे उलझ रहा है।

पिताजी के बैठकखाने मे एक आराम-कुरसी पर बैठा है लीलाधर। सामने की खिड़की मे से नीले आसमान की तरफ घण्टो देखता रहा। प्रयाग की तरह यहाँ भी आसमान साफ नहीं था। छोटे-बडे बादलों के अनेक टुकडे नीलाकाश मे इधर-उधर झूल रहे थे।

लीलाधर भी अनन्त आकाश मे झूलते हुए बादलों की तरह झूलने लगा उसी रेखा नारी की बातों को पकड़कर। एकाकी यौवन की रगीन घडियों मे जिस नारी को लेकर लीलाधर कभी उलझा नहीं, भटका नहीं, आज उसी नारी को लेकर किसी वेदना के भँवरजाल मे अपने को चारो ओर से घिरा हुआ महसूस कर रहा है। हाँ, चारों ओर से। एक ओर उसकी पत्नी अलका है, जिसके प्रति उसका सबसे बडा कर्त्तव्य है ईमानदारी। दूसरी ओर यह रेखा है, जिसकी निश्छल पूजा का वह देवता बन चुका है, और देवता बन चुकने पर जिसके प्रति वह अपनी सहानुभूति उँडेलने के लिए उद्वेलित हो रहा है। तीसरी ओर है समाज, जिसके दायरे मे रहकर एक अविवाहित नारी के प्रति—रेखा के प्रति—अपने आकर्षण को व्यक्त करना भी वह अपने अधिकार के बाहर की बात समझ रहा है। चौथी ओर है उसका कार्यक्षेत्र, जो गहन उत्तरदायित्व का मुकुट उसके सिर बाँध चुका है: डिपुटी कलेक्टर होकर क्या वह इस रोमास मे अपने को

बहा भी सकेगा ? जो कहीं उसके इस रोमास को दुनिया समझ ले तो .. ?

इन दुर्निवार चिन्ताओं से—परेशानियों से—लीलाधर की बुद्धि जैसे खण्डित हो रही थी। वह अपने-आपको पराजित स्वीकार कर रहा था। एक आहत और परकटे पक्षी की तरह इस प्रकार कब तक वह रह सकेगा ?

इसी बीच लीलाधर की बहिन लता ने कमरे मे प्रवेश किया। उसकी पदचाप सुन, वह प्रकृतिस्थ हो गया। लता को अपने सामने देखकर बोला—'क्या है लता ?'

'माँ बुला रही हैं आपको !'

'क्यों ?'

इस प्रश्न से लता सकपकायी नहीं। शायद वह पहले से ही इस प्रश्न का उत्तर देने की तैयारी करके आई थी। कहा—'मैं क्या जानूँ !'

'हूँ !' कहकर लीलाधर ने जैसे प्रकट किया कि वह जानता है यह सब, लेकिन पूछना भी नहीं चाहता जोर देकर।

'चलिए न ?' लता ने फिर कहा।

'चलो !' और लीलाधर अपनी माँ के सामने जा पहुँचा।

'एक ही दिन का समय लेकर आए हो, बेटा ?' माँ ने पूछा।

'हाँ।'

'क्यों ?'

'आजकल कई जरूरी मुकदमे चल रहे है, माँ !'

'लेकिन एक दिन मे हम लोगो को सन्तोष नहीं हो सकता।' माँ ने अपनी बात कह दी—'तुम भले ही हम लोगों को देखकर एक दिन मे वापस चले जाओ; लेकिन बहू को भी क्या हम लोग एक ही दिन मे वापस भेज दे ?'

'यह मैं कब कहता हूँ !' लीलाधर ने भी प्रश्न का उत्तर प्रश्न मे ही देकर अपनी माँ के अधिकार की व्यापकता प्रकट की, यद्यपि वह जानता था कि इस उत्तर की पृष्ठभूमि पर उसका अपना स्वार्थ भी है। वह जिन मानसिक उलझनों मे उलझा हुआ था, उनसे छुटकारा पाने के लिए, उन पर गम्भीर चिन्तन करने के लिए यह जरूरी था कि कुछ दिन वह सर्वथा एकाकी रहे। एकान्त मे रहकर ही मानव अपनी मानसिक चिन्ताओ से मुक्ति पाने का मार्ग खोज सकता है।

'यही तो मैं चाहती हूँ।' माँ ने कहा—'कि बहू कुछ दिनों के लिए हम लोंगो के पास रह ले। तुम्हारे पिताजी भी कह रहे थे कि विवाह के बाद ऐसा कोई मौका ही नहीं मिला कि बहू कुछ दिन यहाँ रह सकती। तुम जब चाहोगे, लता के साथ बहू को हम लखनऊ भेज देंगे। और अच्छा हो, तुम स्वय दो-चार दिन की छुट्टी लेकर फिर कभी आओ और इन दोनों को ले जाओ।'

'पन्द्रह दिन के बाद यह हो सकेगा।' लीलाधर ने कहा।

'इतने से हम लोगों को काफ़ी सन्तोष हो जाएगा।' माँ ने कहा।

'लेकिन भैया!' लता ने कहा—'आपको वहाँ तकलीफ़ न होगी? रसोइया सब काम कर सकेगा समय पर?'

'क्यों न करेगा?' माँ ने अधिकार के स्वर मे कहा—'नौकर इसीलिए होते है कि समय पडने पर काम आ सके।'

'तुम ठीक कहती हो, माँ!' लीलाधर ने कहा—'सब ठीक रहेगा। फिर थोड़ा-बहुत कष्ट भी हुआ, तो उसकी मुझे चिन्ता नहीं। तुम सबकी प्रसन्नता के लिए क्या इतना भी न होगा मुझसे?'

'जुग-जुग जियो, बेटा!' माँ का वात्सल्य हिलोरें ले उठा—'माँ-बाप की प्रसन्नता का इतना भी खयाल यदि सन्तान न रखे, तो वह सन्तान ही क्या।'

और, लीलाधर शाम की गाडी से लखनऊ के लिए अकेला ही चल पडा ।

लखनऊ पहुँचकर लीलाधर फिर अपनी उसी उधेड-बुन मे उलझ गया ।

वेदना और रेखा ? रेखा और समाज ? .

उस दिन प्रयाग मे रेखा को वचन देकर भी लीलाधर उसे पूरा नहीं कर सका । सन्ध्या समय उसने प्रतीक्षा की होगी, लेकिन निराशा ही उसके हाथ लगी होगी : दिए गए वचन की रक्षा करना भी नहीं जानता लीलाधर । कितना निर्मम होता है पुरुष ! निर्मम और शायद ग़ैरईमानदार भी ! रेखा नारी जो है ! पुरुष के प्रति उसका ऐसा सोचना ठीक है—उस पुरुष के प्रति, जिसने समाज का सगठन किया और नारी तथा पुरुष की मर्यादाएँ निर्धारित कर दीं । मर्यादाओ की जंजीरों ने नारी को भी बाँधा और पुरुष को भी । नारी समझती है, पुरुष ने चूँकि इन जंजीरों का—सामाजिक मर्यादाओं का—निर्माण किया, अतः नारी को कसकर बाँध दिया—ऐसा कि वह एकदम दब गई । लेकिन पुरुष ने अपने को इतना कसकर नहीं बाँधा । कदाचित् इसीलिए पुरुष अपेक्षाकृत स्वच्छन्द रहा । इसी स्वच्छन्दता ने उसे धीरे-धीरे नारी के प्रति निर्मम बना दिया और गैरईमानदार भी ।

परन्तु लीलाधर को लगा कि बात ऐसी नहीं है । पुरुष के निर्मम और गैरईमानदार होने मे अथवा उसे ऐसा समझने मे भी कई सामाजिक मर्यादाएँ उत्तरदायी है । जब तक ये सामाजिक मर्यादाएँ बदल नहीं दी जातीं, तब तक आज के पुरुष को ऐसा एकाकी फतवा देना उचित नहीं । उसे याद आया, लता ने कभी उसे बतलाया था कि रेखा की माँ रेखा के हाथ लीलाधर के साथ पीले करना चाहती थी । इस रुख का पता लीलाधर की माँ को किसी तरह चल गया

था। तब उन्होंने कहा था—मेरे बेटे को खरीदने का हौसला आखिर किस बल पर करती है यह मास्टरन !' और लीलाधर ने स्वीकार किया कि विवाह-जैसे अनुष्ठान मे यह खरीदने की जो भावना अपना घर कर चुकी है, वह हमारी सामाजिक मर्यादाओं की ही एक विभीषिका है। जब तक यह विभीषिका आमूल परवर्त्तित नहीं की जाएगी, इसके लिए किसी एक पुरुष अथवा नारी का विद्रोह किसी काम का नहीं। फिर, लीलाधर को तो इस सबका पता तब चल सका था, जब हाट लुट चुकी थी—उसका पाणिग्रहण अलका के साथ हो चुका था।

लेकिन यह वस्तुस्थिति जब तक रेखा को समझा न दी जाए, वह कैसे लीलाधर को निर्दोष समझ सकेगी ? लीलाधर ने निश्चय किया कि वह एक दिन के लिए प्रयाग जाएगा और रेखा को यह सब समझा देगा। बिना ऐसा किए उसकी वेदना कम न होगी। .

शनिवार को शाम की गाडी से वह प्रयाग के लिए चल पडा। चलते समय अपने रसोइया से सिर्फ इतना कहा—'मैं सरकारी काम से दौरे पर जा रहा हूँ। कल वापस आ जाऊँगा।'

गाड़ी जब प्रयाग का पथ पार करने लगी, तब लीलाधर को स्वयं पर एक खीझ होने लगी। रसोइया-जैसे एक साधारण नौकर से भी वह झूठ बोला है आज। उसके नैतिक पतन की भी कोई सीमा है ! लेकिन दूसरे ही क्षण उसे लगा कि जिस सत्य से व्यर्थ का कलह उत्पन्न होने की सम्भावना हो, उसे छिपा, झूठ बोलने मे नैतिक पतन-जैसी कोई बात नहीं। जो कहीं प्रयाग जाने और रेखा से मिलने की बात वह रसोइया से कह देता, तो अलका को कितना कष्ट होता ! अलका उसकी पत्नी है। प्रयाग मे माघ-मेले के अवसर पर वह रेखा को देख चुकी है। बातचीत से शायद वह यह समझ चुकी है कि रेखा के प्रति मेरा आकर्षण भी है। और कौन जाने, लता ने कहीं यह भी

न कह दिया हो कि रेखा के साथ ही मेरा विवाह भी होनेवाला था। ऐसी दशा मे उसने रसोइया से जो झूठ बात कही है, उसके लिए उसे लज्जित होने की कोई बात नहीं! अपने सिर को हलका-सा झटका देकर लीलाधर प्रकृतिस्थ होने का यत्न करने लगा। किसी को वह अनावश्यक कष्ट नहीं देना चाहता। किसी को अनावश्यक कष्ट देना उसकी समझ मे सबसे बड़ा झूठ है।

अब लीलाधर दूसरी विचार-धारा के भँवरजाल से घिरने लगा। प्रयाग वह जा तो रहा है, लेकिन रेखा का घर उसे मालूम नहीं। फिर वह जाएगा कहाँ? क्या ताँगे पर बैठा हुआ घण्टो इधर-उधर घूमता रहेगा? प्रयाग मे उसके अनेक परिचित हैं। जो कहीं कोई परिचित मिल गया तो..? क्या कहेगा लीलाधर, जब वे पूछेंगे कि गौ-घाट पर वह किसके घर जा रहा है? लेकिन दूसरों की आलोचना के भय से लीलाधर उतना हैरान नहीं, जितना स्वतः की जानकारी के अभाव से।

कुछ देर तक इसी तरह उलझता रहा लीलाधर। फिर उसे याद आया कि माघ-मेले मे उस दिन जमुना-पुल पर जब लता और अलका के साथ रेखा को उसने देखा था, तब रेखा ने वहीं घाट पर खडे-खडे अपना मकान बतलाया था। एक धूमिल-सा चित्र उस मकान का, लीलाधर की आँखो के सामने नाच उठा। कच्चा मकान था वह। जमुना की ओर उसका मुख था। घर के पार्श्व मे दस-पाँच ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे। यह धूमिल चित्र पर्याप्त था। उस मकान के पास पहुँचकर वह किसी भी पड़ोसी से पूछ लेगा कि रेखा नाम की अध्यापिका कहाँ रहती है। लडकियो के उस अँगरेजी स्कूल का नाम भी लीलाधर जानता है, जिसमे रेखा अध्यापिका है। इसी विश्वास के सहारे लीलाधर ने सन्तोष की एक साँस ली। मानसिक उलझन से मुक्त था अब वह।

सेकण्ड क्लास कम्पार्टमेण्ट मे लीलाधर सफ़र कर रहा था। एक अटैची-केस और होल्ड-आल उसके साथ था। जिस बर्थ पर वह बैठा था, उस पर अन्य कोई मुसाफ़िर उसका साझीदार न था। वह चाहता, तो आराम से लेट सकता था उस बर्थ पर। लेकिन अपनी ही उधेड़बुन मे वह व्यस्त जो था। उधेड़बुन से मुक्त होते ही अब उसने अटैची-केस खोलकर 'माडर्न रिव्यू' निकाली और उसमे खो जाना चाहा। लेकिन इसी बीच सामने के बर्थ पर दृष्टि जा अटकी। कोई योरपियन मुसाफ़िर था उस बर्थ पर। अब तक वह पैर फैलाए लेटा था। लेकिन अब वह उठ बैठा था और नीचे के बर्थ पर एक कोने मे सिकुडा-सिमटा-सा जो एक व्यक्ति बैठा था, वह उसका 'होल्ड-आल' समेट रहा था! यह देख, लीलाधर को लगा कि शायद इलाहाबाद स्टेशन अब क़रीब है। वह अपने बर्थ से उठा। सामने की खिड़की खालकर जो उसने देखा, तो सचमुच बिजली के लट्टुओ से जगमगाता प्रकाश-पुज उसके सामने था। उसे निश्चय हो गया कि इलाहाबाद स्टेशन आ पहुँचा है। खिड़की उसने पूर्ववत् बन्द कर दी। हाथ मे 'माडर्न रिव्यू' की जो प्रति थी, उने पुनः अटैची-केस मे रख दिया और प्लेटफार्म पर गाडी के पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगा।

४

एक मिनट से अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पडी कि गाडी प्लेटफार्म पर जा लगी। एक कुली ने लीलाधर का सामान सँभाला और वह कम्पार्टमेण्ट से उतरकर चल पडा। आगे-आगे लीलाधर चल रहा था और पीछे-पीछे कुली। गेट से जब लीलाधर बाहर हो गया, तो लौटकर उसने अपने कुली को देखना चाहा कि कितने पीछे है। सिर पर होल्डआल रक्खे और एक हाथ मे अटैची-केस लिये हुए कुली भी गेट से बाहर आ ही रहा था कि ठीक उसके पीछे खद्दर की साडी पहने जो एक महिला आ रही थी, उसे देख लीलाधर चौक पडा। अरे, यह तो रेखा है! एक क्षण के लिए वस असमंजस मे पड गया। रेखा यहाँ क्यो आई? तो क्या उसे मेरे आने की खबर मिल चुकी? नहीं, यह असभव है।

और, कुली के पीछे-पीछे रेखा उसके बिलकुल निकट से गुजर गई। उसने लीलाधर की तरफ़ देखा तक नहीं। लीलाधर को लगा कि रेखा ने उसे देखा नहीं है। किसी और काम से आई होगी स्टेशन पर। लीलाधर के पास आकर कुली खडा हो गया था। तभी लीलाधर ने दो कदम आगे बढ़कर कहा—'रेखा!'

यह अप्रत्याशित सबोधन रेखा को चौका देने के लिए पर्याप्त था। उसने घूमकर देखा तो एक क्षण के लिए आश्चर्यान्वित रह गई। फिर दोनों हाथ जोड़कर कहा—'नमस्ते !'

लीलाधर उसके नमस्ते का उत्तर चुपचाप हाथ जोड़कर दे कि इसके पहले ही रेखा ने प्रश्न किया—'अरे, आप यहाँ कहाँ ?'

'तुम्हारे पास ही आया हूँ रेखा !' लीलाधर ने निश्छल भाव से कह दिया।

'रहने दीजिए !' रेखा ने उपालम्भ देते हुए कहा—'व्रचन देकर भी जो मेरे पास आने की परवा नहीं करता, वह .. !'

'क्या आएगा अब ?' लीलाधर ने रेखा का अधूरा वाक्य पूरा कर दिया और हलकी मुसकराहट के आवरण मे कहा—'लेकिन तुम विश्वास करो रेखा, उसी वचन को पूरा करने आज मैं लखनऊ से यहाँ आया हूँ।'

'तो चलिए !' रेखा ने प्रसन्न मुद्रा से कहा।

लीलाधर चुपचाप रेखा के साथ चल पड़ा। एक ताँगे पर कुली ने सामान रख दिया। एक चवन्नी लीलाधर ने उसे दी और रेखा के साथ ताँगे पर जा बैठा।

ताँगा गौ-घाट की तरफ़ चल पड़ा। दो-एक मिनट तक दोनों मौन रहे। फिर लीलाधर ने कहा—'स्टेशन पर तुम मिल गई रेखा, यह बहुत अच्छा हुआ। इससे मेरी बड़ी परेशानी दूर हो गई।'

'परेशानी ?' रेखा ने कुछ स्पष्ट बात जाननी चाही।

'हाँ रेखा !' लीलाधर ने कहा—'तुम्हारा घर खोजने मे मुझे बहुत अड़चन होती।'

'शायद इसी अड़चन के भय से उस दिन आप लोग मेरे यहाँ नहीं आए ?'

लीलाधर को लगा कि यह रेखा सबसे पहले, उस दिन न आ

सकने की कैफ़ियत चाहती है शायद। नारी की जिज्ञासा जो ठहरी! कहा उसने—'उस दिन न आ सकने के दो कारण थे। एक तो मेले में घूमते-घूमते इतना विलम्ब हो गया था कि गोरखपुर की गाडी ही मुश्किल से मिल सकी। दूसरे .।' कहते-कहते लीलाधर रुक गया।

'आप रुक क्यों गए?' रेखा ने पूछा—'दूसरा कारण भी कह दें।'

'न कहने से क्या तुम नहीं समझ सकोगी, रेखा?' लीलाधर ने कहा—'बहुत-सी बाते ऐसी होती है, जो बिना कहे भी समझ ली जाती है।'

'और यदि मैं कहूँ कि नहीं समझी तो?'

'तो भी मै कहूँगा नहीं। तुम्हे समझ लेना चाहिए। न समझ सको, तो यह तुम्हारी गलती है, मेरी नहीं।'

'ओह! अब समझी!' रेखा ने कहा—'दूसरा कारण शायद बहिन लता और पत्नी अलका का साथ था। है न?' सड़क पर जग-मगानेवाले बिजली के तीव्र प्रकाश मे रेखा के ओठों पर एक मुसक-राहट स्पष्ट दीख पडी लीलाधर को।

'अच्छा, यह तो बतलाओ रेखा,' लीलाधर ने प्रसग बदलते हुए कहा—'तुम स्टेशन क्यो गई थीं?'

'अपनी एक सहेली को भेजने। कालका मेल से वह कलकत्ता गई है अभी।'

इसके बाद थोड़ी देर तक मौन वातावरण रहा उस ताँगे मे। और इसी बीच ताँगा गौ-घाट पर पहुँच चुका था। रेखा ने ताँगेवाले से कहा—'सामने चले चलो। वह ऊँचे-ऊँचे वृक्ष जो खडे है, वहीं।'

ताँगा जाकर रेखा के कच्चे-से मकान के सामने जा रुका। ताँगे-वाले ने स्वयं लीलाधर का होल्ड-आल और अटैची-केस उठाकर मकान के बरामदे मे रख दिया और डेढ़ रुपया पाकर चला गया।

रेखा ने दरवाजा खोला। भीतर पहुँचकर धीमी जलती हुई डीज़

लालटेन का प्रकाश तेज किया। फिर बाहर आकर लीलाधर से कहा—'चलिए न भीतर।' और होल्ड-आल उठाने लगी।

'मै रखे लेता हूँ।' लीलाधर ने कहा और जाकर होल्ड-आल रेखा के हाथ से छीनने लगा।

'नहीं, आप मेरे मेहमान हैं।' रेखा ने कहा और होल्ड-आल भीतर ले गई।

अटैची-केस उठाकर लीलाधर भी रेखा के साथ भीतर चला गया। बड़ा सकोच हो रहा था लीलाधर को मन-ही-मन। एक नारी का मेहमान! वह भी कुमारी का मेहमान! एकदम अकेली रहने-वाली कुमारी का मेहमान!

रेखा ने स्टोव जलाया, तो लीलाधर ने पूछा—'यह क्यो?'

'चाय बना रही हूँ।'

लीलाधर चुपचुप देखता रहा। रेखा ने हलुवा बनाया और कुछ नमकीन भी। फिर चाय बनाकर मेज पर ला रखी सब सामग्री। लेकिन हरिणी की तरह चौक पड़ी वह। दाँतों से अपने ओठ चबाते हुए कहा उसने—'अरे, आपने हाथ-मुँह तो धोया ही नहीं।' और फ़ौरन एक लोटे मे पानी ले आई।

लीलाधर चुपचाप देखता रहा अपनी पुजारिन की यह श्रद्धा। चाय पीते हुए कहा रेखा ने—'आपके अनुरूप स्वागत करने की मेरी हैसियत नहीं है, इसे आप न भूले।'

'शिष्टाचार की अपेक्षा बेगाने से की जाती है, रेखा!' लीलाधर ने आत्मीयता के आवरण मे कहा।

रेखा आज समझ सकी है इस पुरुष की आत्मीयता। देवता समझकर इसकी पूजा की है उसने; लेकिन कोई प्रतिदान नहीं मिला आज तक। कहा उसने—'यह क्षण चिरस्मरणीय रहेंगे मेरे जीवन में।' फिर चुप हो गई। उसने स्वीकार किया कि देवता की पूजा

करने पर, उसकी आराधना करने पर जिस तरह अप्रत्याशित क्षणों में ही उसका वरदान उपलब्ध होता है, उसी तरह आज लीलाधर से भी उसे यह सब मिल रहा है।

'यह कहने की जरूरत नहीं, रेखा!' लीलाधर ने कहा—'मैं सब सुन चुका हूँ। लता ने मुझे सब बतला दिया है।'

रेखा चुपचाप सुनती रही।

'और इसीलिए आज मै यहाँ आया हूँ।' लीलाधर ने अपनी बात आगे बढ़ाई—'उस दिन न आ सकने की कैफियत देने ही आया हूँ। न आने पर वेदना की छाया से मै अब तक घिरा रहा।'

चाय अब तक समाप्त हो चुकी थी। सिगरेट-केस मे से एक सिगरेट निकाला लीलाधर ने और उसे सुलगाकर एक कश खींचकर कहा—'लेकिन इस मामले मे दोष मेरा नही है, रेखा! मुझे तो सारी बातों का पता तब चला, जब हाट लुट चुकी थी। मै विवश था।' लीलाधर को जो कुछ कहना था, शायद इतने संक्षिप्त रूप मे ही सब कह चुका था।

'मैं किसी को दोषी नहीं मानती!' रेखा ने कहा—'यह तो भाग्य की बात है।'

'भाग्य नहीं, रेखा! सामाजिक विधान और मर्यादाएँ ही इसके लिए दोषी हैं। मेरा मतलब यह है कि प्रचलित सामाजिक मर्यादाएँ जब तक आमूल परिवर्त्तित नहीं की जातीं, दुनिया मे यही सब होता रहेगा।'

रेखा चुप रही। फिर एक क्षण के बाद उसने इस प्रसग को बदल दिया। लीलाधर की कैफियत से उसे पूरा सन्तोष हो चुका था। अपने आराध्य के मुख से इतनी ही बात सुनने के लिए वह अब तक छटपटाती रही थी। आज यह आकांक्षा पूरी हो चुकी। कहा उसने—'अच्छा तो अब आप आराम कीजिए।' और होल्ड-आल की तरफ़ बढ़ गई।

लीलाधर फिर एक गहरे सकोच से भर उठा। सूने घर मे एक कुमारी की छाया मे वह सो भी सकेगा? लेकिन वह देखता रहा चुपचाप कि रेखा उसके सोने की व्यवस्था कहाँ कर रही है। उसने सोचा, शायद बाहर के बरामदे मे एक पलग पर उसके सोने की व्यवस्था की जाएगी। लेकिन वह स्तब्ध रह गया यह देखकर कि उसी कमरे मे एक दूसरे पलंग पर रेखा ने उसका होल्ड-आल खोलकर बिस्तर बिछा दिया है। बिस्तर बिछाकर वह फिर आ बैठी लीलाधर के पास पड़ी हुई एक दूसरी कुरसी पर।

लीलाधर अब अपने संकोच को दबा नहीं सका। कहा उसने—'रेखा, तुम शायद नहीं जानतीं कि.. ....।' बात पूरी न कह सका लीलाधर।

'क्या?' रेखा ने जिज्ञासा प्रकट की।

'शरत्चन्द्र के एक उपन्यास मे ऐसे ही अवसर पर किसी पुरुष ने नारी से यह कहा था कि—सूने घर मे अनात्मीय नर-नारी का सिर्फ़ एक ही सम्बन्ध आपको मालूम है—पुरुष के निकट औरत सिर्फ़ औरत ही है।'

'और उस नारी ने जो उत्तर उस पुरुष को दिया था, वही मैं दोहराना चाहती हूँ।' रेखा ने कह दिया—'मैं उनकी जाति की नहीं हूँ, जो पुरुष के भोग की वस्तु हैं।'

'तो तुमने भी शरत्चन्द्र का वह उपन्यास पढा है, रेखा?' आश्चय से भरकर लीलाधर ने पूछा।

'इसका उत्तर देने की शायद जरूरत नहीं।' रेखा ने लीलाधर की तरफ देखते हुए कह दिया।

लीलाधर को अपनी गलती का पता चल गया। वह लज्जित हुआ। उसे लगा कि सचमुच यह प्रश्न करना अनावश्यक था। यदि रेखा ने वह उपन्यास न पढ़ा होता, तो ठीक वही उत्तर देती कैसे! तभी

उसने कहा—'फिर भी दुनियादारी और समाज का ध्यान तो रखना ही पड़ता है, रेखा !'

'आप स्वयं अभी कह चुके है, कि इस समाज की मर्यादाओ को आमूल परिवर्त्तित करने की जरूरत है ।'

लीलाधर की यह दूसरी और करारी हार हुई। नारी के समक्ष एक पुरुष की हार । लेकिन लीलाधर को इस हार से दुःख नहीं हुआ । अपनी पुजारिन से हार मानने मे देवता को ग्लानि कैसी ? तभी लीलाधर ने कहा—'अच्छा रेखा, एक बात पूछता हूँ ! सच-सच बतलाना । समाज की इन मर्यादाओ से ऊबकर तुमने अपने सम्बन्ध मे क्या निश्चय किया है ?'

'प्रश्न को कुछ और स्पष्ट कीजिए न ?'

'यही कि तुम अपना विवाह कब तक और किससे.......?' लीलाधर जान-बूझकर रुक गया । बात शायद अधूरी रहकर भी पूरी हो चुकी थी ।

'कभी नहीं और किसी से नहीं ।' रेखा ने कह दिया ।

लीलाधर अवाक् रह गया । रेखा के तेजस्वी मुख पर वह जैसे उसके अटल निश्चय को स्पष्ट पढ़ रहा था । पूछा उसने—'किसी साथी की जरूरत भी महसूस नहीं करतीं तुम ?'

'साथी की जरूरत!' रेखा ने व्यग्य की हँसी हँसकर कहा—'साथी तो विवाह न करने पर भी बहुत मिल सकते है । विवाह करके ही उसे प्राप्त किया जाए और पति के रूप मे ही वह रहे, यह आवश्यक नहीं ।'

लीलाधर को लगा कि यह रेखा कितनी क्रान्ति बटोर चुकी है अपने मन मे । परन्तु इस तरह रहना तो कलक की बात भी हो सकती है । इसीलिए उसने अपनी शका का समाधान चाहा—'तो फिर विवाह न करने से ही किस आदर्श का निर्वाह कर सकोगी तुम ?'

'आप मेरा आशय नही समझ सके—बिलकुल नहीं समझे।' रेखा ने कहा—'मेरा मतलब सिर्फ यही है कि मै अविवाहित रहूँगी—आजीवन कुमारी।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'मैं जानती हूँ, मेरी पहली बात मे यह स्पष्टता नही थी, इसीलिए आप मेरा आशय नहीं समझे।'

'तब जीवन-भर अध्यापिका रहोगी, रेखा?'

'जीविका चलाने के लिए यह करना ही होगा। लेकिन और भी कुछ करूँगी।'

'वह क्या?'

''कैसे कह दूँ अभी। बहुत-से मार्ग है, जिन पर कदम बढ़ाकर राष्ट्र की सेवा कर सकती हूँ। समय आने पर आप स्वय देखेंगे मेरी गतिविधि।'

'तो मैं विश्वास करूँ कि तुम्हारी गतिविधि जानने का मैं भी अधिकारी रहूँगा?'

'विश्वास की बात है। यह कहने से नहीं किया जाता। समय और व्यवहार अपने-आप विश्वास करने को बाध्य कर देता है।'

रेखा की इस नपी-तुली बात पर लीलाधर कायल हो उठा। कितनी ठोस बात करती है यह रेखा!

और, उस रात रेखा का मेहमान रहकर लीलाधर दूसरे दिन लखनऊ वापस चला गया। कितनी आत्मीयता पाई है इस रेखा से उसने! कितनी निकटता का अनुभव कर सका है वह! रेखा के चरित्र-बल, आत्मविश्वास और अपने प्रति उसकी अगाध आत्मीयता से लीलाधर मन-ही-मन उसकी वन्दना कर उठा।

चलते समय रेखा की वह मूर्ति जो लीलाधर के विछोह से अनायास ही सजल हो उठी थी, कितनी महिमामयी है। नारी का यह रूप—रेखा का यह रूप—लीलाधर कभी भूल न सकेगा।

५

सहृदय और स्नेहशीला रेखा से मिलकर लीलाधर की विकलता तिरोहित हो चुकी है। अपने प्रति रेखा की निश्छल आत्मीयता का आभास पाकर लीलाधर को लगा कि आनन्द का एक मुक्त निर्झर अपनी छहरती बूँदों से उसके अन्तस्तल का अभिषेक कर रहा है।

नारी को जो लोग भोग-विलास का उपकरण-मात्र समझते हैं, उनके प्रति लीलाधर एक घृणा से भर उठा। उसने स्वीकार किया कि ऐसा समझनेवाले पुरुष या तो मूर्ख हैं, अथवा फिर रेखा-जैसी नारियों से उनका कभी पाला नहीं पड़ा। सतीत्व का मखौल उडाने-वालो की प्रगतिशीलता पर लीलाधर को तरस आने लगा। रेखा-जैसी कुमारी का मेहमान रहकर—रात भर एकाकी कुमारी के घर एक ही कमरे मे रहकर—लीलाधर ने जिस रहस्यमयी और बज्र-रेखा को अपने और उसके बीच अनुभव किया था, उस अदृश्य रेखा को उसने जो कुछ समझा और पढा था, वह था कुमारी रेखा का सयम, उसकी शालीनता और अपने-आप पर दृढ़-विश्वास की गहन-गम्भीरता। वह तनिक भी कम्पित, शंकित नहीं थी। एक पुरुष की निकटता

से उसे तनिक भी भय नहीं था। एक अनाहूत अतिथि का निश्छल स्वागत ही उसका लक्ष्य था।

चाय पीकर बैठक मे एक आराम-कुरसी पर अधलेटा लीलाधर सिगरेट पी रहा था और रेखा को लेकर उलझ रहा था। प्रभातकालीन सूर्य की सुनहरी किरण-राशि इस बैठक मे अपना प्रच्छन्न आलोक बिखेर रही थी। दरवाज़े पर लटकता हुआ पर्दा बसन्त की मादक वायु के झोंकों से रह-रहकर हिलता-डुलता नजर आ रहा था। इसी पर्दे पर लीलाधर की दृष्टि स्थिर थी। अविदित तौर पर उसने अनुभव किया कि रेखा की महिमामयी मूर्त्ति भी इसी पर्दे पर हिल-डुल रही है—ऐसी मूर्त्ति, जिसके एक हाथ मे धूपदान का पात्र अगरु की सुगन्धित धूम्र-रेखाएँ फैला रहा है और दूसरे हाथ मे सुरभित फूलो का मनोरम गुच्छा है। देवता के सामने देवदासी आरती-नृत्य मे जिस तरह रत रहती है और उसके पायल की झनकारों से मन्दिर का प्रागण पुलक-विभोर हो उठता है, ठीक इसी तरह लीलाधर ने अपने सिगरेट की रुपहली धूम्र-रेखाओं के बीच इस बैठक को महसूस किया। रेखा का यह काल्पनिक चित्र बड़ा भला और मोहक लग रहा था उसे। सब-कुछ भूलकर वह इसी मनोरम चित्र को ध्यानस्थ हो देख रहा था—देखते रहना चाहता था।

लेकिन इसी बीच बाहर के बरामदे मे बैठे हुए चपरासी की एक हरकत ने लीलाधर का ध्यान भंग कर दिया। बहुत क्रोध आया उस चपरासी पर। लेकिन उसी ओर सारा ध्यान बरबस केंद्रित करते हुए लीलाधर ने जाना कि कोई मिलनेवाला आया है और चपरासी से पूछ रहा है कि साहब से इस वक्त मुलाकात हो सकती है या नहीं? साहब क्या कर रहे है?....

लीलाधर को इस समय अपने उच्चपद पर भी जैसे एक खीझ होने लगी। वह डिपुटी कलेक्टर क्या हो गयी है, एक बला मोल ले चुका

है। जब देखो तब मिलनेवालों का ताँता ही नहीं टूटता। सुबह हो, चाहे शाम; इजलास हो या घर का बैठकखाना, इन मिलनेवालों का चक्र चलता ही रहता है। यही कारण है कि लीलाधर ने अपने चपरासी को सख्त हिदायत दे रक्खी है कि बिना नाम-पता पूछे, किसी भी मिलनेवाले को सीधा उसके पास हरगिज न भेजा जाए। और जब हिदायत दे रखी है, तो उसका पालन चपरासी को करना ही होगा। फिर उसकी हरकत पर नाराज होने की गुञ्जाइश ही कहाँ? इसीलिए लीलाधर चुपचाप अपने क्रोध को पी गया।

चपरासी ने दबे-पैरों बैठकखाने मे आकर कहा—'अग्रवाल साहब आपसे मुलाकात करने आए हैं।'

'आने दो उन्हे।' लीलाधर ने कह दिया।

इस समय यद्यपि लीलाधर किसी से नहीं मिलना चाहता था, फिर भी अग्रवाल साहब को लौटा देने की धृष्टता न कर सका वह। यह मदनगोपाल अग्रवाल लखनऊ के नामी हाईकोर्ट एडवोकेट है। दो-एक मुकदमों की पैरवी के सिलसिले मे लीलाधर के इजलास मे भी इन्हे जब आना पड़ा, तो लीलाधर इनसे बहुत प्रभावित हुआ। और इसके बाद धीरे-धीरे इनकी घनिष्ठता बढ़ती गई। क्लब मे ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जब इन दोनो मे आपस की गपशप न होती हो।

अग्रवालजी ने बैठकखाने मे प्रवेश करते ही कहा—'माफ़ कीजिए तिवारीजी, सबेरे-सबेरे ही आ धमका मैं।'

'माफ़ तो मै कर नहीं सकता।' लीलाधर ने कहा और सिगरेट-केस उनकी तरफ़ बढ़ा दिया।

सामनेवाली कुरसी पर इतमीनान के साथ बैठ, सिगरेट-केस मे से एक सिगरेट निकाला अग्रवालजी ने और उसे सुलगा लेने पर कहा—'क्यों भाई, इतनी बेरुखी क्यों?'

'सबेरे का समय आपको अपने क्लाइएट्स के साथ बिताना चाहिए, न कि गपशप मे।' लीलाधर ने कहा।

'तो यह कहिए कि मेरी रोजी की फिकर आपको मुझसे अधिक है?' अग्रवालजी ने कहा और मुसकराहट से भर उठा उनका मुख।

'एक मित्र के नाते यह कोई आश्चर्यजनक बात तो नहीं।' लीलाधर ने सयत स्वर मे कह दिया।

'इसके लिए धन्यवाद!' अग्रवालजी ने कहा—'आज क्लाइएट्स की रेलपेल नहीं थी। इने-गिने दो-तीन क्लाइएट्स थे और उनका काम करके आ रहा हूँ।'

'कहिए, कैसे तकलीफ की?'

'वाह साहब! यह खूब कहा आपने! कल आप क्लब मे नहीं दीखे, तो तरह-तरह की आशकाएँ होने लगीं मुझे। सोचा, कहीं तबीअत तो खराब नहीं हो गई?'

'नहीं भाई, कल एक जरूरी काम से बाहर चला गया था।' फिर प्रसग बदलते हुए कहा लीलाधर ने—'अच्छा, कोई नई खबर?'

'हाँ, एक नई खबर भी है।' अग्रवालजी ने कहा—'आज रात को मेरे यहाँ सगीत और नृत्य-प्रदर्शन होगा। आपको आमन्त्रित करने आया हूँ।'

'किस खुशी मे, भाई?'

एक ठहाका मारकर अग्रवालजी खिलखिला उठे। लीलाधर के इस प्रश्न से मानो उन्हे असीम आश्चर्य हुआ। एक मिनट के बाद कहा—'भई वाह! सगीत और नृत्य का प्रदर्शन किसी खुशी मे ही किया जाए, यह तो मैने आज तक नहीं सीखा। मन चगा तो कठौती मे गगा। रोजी कमाने और खाने मे तो मानव नित्य लगा रहता है। पारिवारिक और सासारिक परेशानियाँ किसी प्रेत की तरह हमारे

पीछे लगी रहती हैं। ऐसी हालत मे मनोरंजन के लिए कोई खास खुशी अथवा किसी अवसर विशेष का मैं कायल नहीं।'

'यह तो निपट व्यक्तिगत बात हुई।' लीलाधर ने कहा—'मैं तो उस आनन्द और मनोरंजन का समर्थक हूँ, जिसमे व्यष्टि और समष्टि के आनन्द का सामजस्य हो।'

'शायद मेरा पेशा ही ऐसा है तिवारीजी, कि मैं चाहूँ भी तो अपने को इस साँचे मे ढाल नहीं सकता। यदि समष्टि और व्यष्टि के आनन्द का सामजस्य मेरा आदर्श हो, तो फिर मुझे किसी भी क्लाइएट से निर्मम होकर अधिकतम फीस नहीं लेनी चाहिए और इस प्रकार समष्टि के आनन्द के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को माटियामेट कर डालना चाहिए।' और एक सफल वकील की तरह अपनी दलील को अकाट्य समझते हुए अग्रवालजी ने इस तरुण डिपुटी कलेक्टर लीलाधर तिवारी की मुद्रा को ध्यानपूर्वक पढने की चेष्टा की।

'पेशे की जो बात आप कह रहे है, उसे मैं किसी हद तक ठीक कह सकता हूँ।' लीलाधर ने कहा—'लेकिन पेशे को ही सब-कुछ समझ लेना और निरे व्यक्तिगत आनन्द की बात कह देना, आप-जैसे सुसस्कृत मानव के लिए अशोभन है।'

'क्यों?' बीच मे ही अग्रवालजी प्रश्न कर बैठे।

'जब आप वकालत का चोगा पहनकर, मुवक्किलो से अपनी फ़ीस का मोल-तोल करते है, तब आप चाहे निर्मम होकर अधिकतम फ़ीस ले अथवा अपना उचित पारिश्रमिक, इस पर मुझे कुछ नहीं कहना है—हालाँकि इस मौके पर भी आप निर्ममता का त्याग कर, अपने परिश्रम का उचित मूल्य ही मुवक्किलों से लिया करे, तो अधिक अच्छा हो। लेकिन वकालत का चोगा उतार देने पर भी, आप अपने

को एक वकील ही समझते रहे—एडवोकेट बने रहे और व्यक्तिगत स्वार्थों को ही लक्ष्य-बिन्दु बनाए रहे, यह कहाँ की मानवता है ?'

'मानवता, सज्जनता और शालीनता का जहाँ तक सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ, आज के युग मे इस सबकी डींग चाहे जितनी कोई हाँकता रहे, परन्तु सौ मे शायद एक ही व्यक्ति ऐसा होगा, जो इनकी रक्षा बराबर करता हो।'

'और यह सब कदाचित् आप इसलिए कह रहे है कि बुद्धिवाद आपको, दूसरो पर सदा शकित रहने की प्रेरणा देता रहता है।' लीलाधर अपनी बात कहता रहा—'आधुनिक युग के बुद्धिजीवी मानव पर मुझे तरस आता है। उसकी स्थिति एकदम भयावह है। वह सदा दूसरों का छिद्रान्वेषण करना चाहता है। वह स्वय कैसा है, यह कभी सोचना नही चाहता। अपनी कमज़ोरियों पर वह कभी ध्यान नहीं देना चाहता। और, मैं तो यह भी कहने के लिए तैयार हूँ कि यह बुद्धिजीवी मानव इसीलिए ससार के लिए किसी काम का नहीं।'

'मेरा ऐसा खयाल है कि यह प्रसंग बहुत जटिल होता जा रहा है।' अग्रवालजी ने शायद पराभूत होते हुए कहा—'और मनारजन की बात के सिलसिले मे यह दार्शनिक प्रसग कुछ बेतुका-सा भी लगता है, अतः आपकी बात को पूर्णतः स्वीकार न करते हुए भी आशिक रूप से स्वीकार कर लेने मे मुझे कोई आपत्ति नहीं। और एक बात अब आपको बतला दूँ कि मनोरजन का यह कार्यक्रम समष्टि के आनन्द के लिए ही रखा गया है।'

'शायद आप यह कहना चाहते है' लीलाधर ने कहा—'कि संगीत और नृत्य का प्रदर्शन आपके अतिरिक्त अन्य अनेक व्यक्तियों का मनोरजन करेगा, इसलिए यह आनन्द समष्टि के लिए हुआ ?

'नहीं साहब !' अग्रवालजी ने मुसकराते हुए कहा—'यह प्रदर्शन

बगाल की एक पार्टी द्वारा किया जाएगा । बगाल के अकाल-पीडितों के कष्ट-निवारण के लिए ही यह पार्टी नगर-नगर मे घूम रही है । सगीत तथा नृत्य का प्रदर्शन कर जो आय इस पार्टी को होती है, उसका अधिकाश भाग अकाल-पीडित-कोष के सयोजक के पास भेज दिया जाता है । इसकी रसीदें भी मै देख चुका हूँ ।'

'यही बात आपने पहले कह दी होती, तो क्यों मेरा लम्बा-चौड़ा व्याख्यान आपको सुनना पडता ?' लीलाधर ने कहा—'तब मैं अवश्य आऊँगा आपके यहाँ ।'

'आपका व्याख्यान सुनने से मुझे बहुत आनन्द आता है, तिवारी जी ?' अग्रवालजी ने कहा—'आपके व्यक्तिगत विचारों को जानने के लिए मैं ऐसे प्रसंगों की तलाश मे ही रहता हूँ । अच्छा, अब आज्ञा दीजिए ।' और कुरसी से उठकर अग्रवालजी लीलाधर को अभिवादन कर चले गए ।

अग्रवालजी जब चले गए, तब लीलाधर का अन्तर्मन बङ्गाल के अकाल को लेकर उलझने लगा । उसने स्वीकार किया कि सङ्गीत और नृत्य का प्रदर्शन करनेवाली जो भी पार्टी इस शहर मे आई हो, उसका त्याग स्तुत्य है । पीड़ित मानवता के प्रति उसका सहयोग वन्दनीय है । आज के बुद्धिवादी युग मे जब पारस्परिक सहायता और सहानुभूति का मात्र-शाब्दिक आडम्बर अपना अस्तित्व रखता हो, तब अकाल-पीड़ितों के लिए शहर-शहर मे जाकर अर्थ-संचय करना निस्सन्देह असाधारण त्याग है ।

लीलाधर के अन्तर्मन मे एक प्रश्न उठा । अग्रवालजी से उसने अभी-अभी जो यह कह दिया है कि यह बुद्धिजीवी मानव ससार के लिए किसी काम का नहीं, यह कहाँ तक ठीक है ? तो क्या ऐसा कहकर लीलाधर ने कोई गलती कर डाली है ? नहीं, लीलाधर ऐसी ग़लती नहीं कर सकता । उसने जो कुछ कहा है, वह ध्रुव सत्य है,

अकाट्य है। उसने बुद्धिजीवी मानव का जो सबसे बड़ा दोष बतलाया है. वह यही कि बुद्धिजीवी मानव सदा दूसरो का छिद्रान्वेषण करना चाहता है; वह स्वय कैसा है, यह कभी नही सोचना चाहता।

इस उधेड़बुन मे लीलाधर घण्टों उलझा रहा। अभी शायद और भी उलझा रहता। लेकिन इसी बीच रसोइया ने आकर कहा—'भोजन तैयार है, सरकार!'

लीलाधर की समाधि जैसे भङ्ग हो गई। उसे लगा कि आजकल वह इस प्रकार तनिक-तनिक-सी बात को लेकर बहुत ज्यादा उलझने लगा है। यह ठीक नहीं है। उसने प्रकृतिस्थ होकर कहा—'अच्छा, मैं अभी स्नानकर भोजन करने आता हूँ। गुसलखाने मे गर्म पानी रख दिया या नहीं?'

'जी हाँ!' रसोइया ने कहा—'सब तैयारी कर चुका हूँ।'

लीलाधर ने स्नानागार मे जाकर स्नान किया। फिर भोजन कर पोशाक बदली और अपनी कार मे बैठकर इजलास की तरफ प्रस्थान किया। इजलास मे आज कोई मुकदमा नहीं था। इनी-गिनी-सी दो-चार फाइले लाकर मुशी ने पहले से ही लीलाधर की मेज पर रख दी थीं। इन फाइलों को देख-पढ़कर आध घण्टे मे ही लीलाधर अपने काम से मुक्त हो गया।

मुशी ने जब अपने साहब—लीलाधर—को कचहरी के काम से मुक्त देखा, तब एक लिफ़ाफ़ा अपनी जेब से निकाल, लीलाधर के सामने मेज पर रख दिया, यह कहते हुए कि एडवोकेट श्री मदन-गोपालजी का नौकर दे गया है।

'नृत्य और संगीत।' लीलाधर ने लिफाफ़ा खोलते हुए कहा—'आयोजन तो अच्छा है।' और निमन्त्रण-पत्र पर मुद्रित कार्यक्रम फ़ौरन पढ़ डाला।

'सुनते हैं, बहुत अच्छी पार्टी है हुज़ूर!' मुशी ने कहा।

'आपको कैसे पता चला ?' लीलाधर ने पूछा।

'आज 'बाररूम' मे इसी की चर्चा बहुत गर्म है, हुजूर।' मुशीजी ने अपनी सफेद दाढ़ी पर एक हाथ सहलाते हुए कहा—'यहाँ आने के पहले, यह पार्टी प्रयाग मे कई दिन जनता का मनोरजन कर चुकी है।'

'लखनऊ के किसी व्यक्ति ने देखा है इस पार्टी का अभिनय ?'

'जी हाँ, जिन दो-तीन वकीलो ने देखा है, वे कह रहे थे कि इस पार्टी मे तीन कुमारियाँ गजब का नृत्य करती है।'

'हूँ।' कहकर लीलाधर ने अपने मुशी की मुद्रा पर उठने-गिरने-वाली भावनाओं को ग़ौर से देखा। मुशी की मुद्रा मानों इस बात का प्रमाण दे रही थी कि तीन कुमारियों का नृत्य—गजब का नृत्य—ही एक ऐसा आकर्षण है, जो जनता के मनोरजन के लिए सब-कुछ है। एक क्षण के बाद लीलाधर ने कहा—'तब तो अग्रवालजी के यहाँ आज खासी भीड़ होगी ?'

'हुजूर, मै तो यही सोच रहा हूँ कि शायद बैठने के लिए कुरसियाँ भी न मिलेगी सबको।'

'हर्ज ही क्या है ?' लीलाधर ने कहा—'जनता चाहती है मनो-रंजन। और मनोरजन के लिए यदि खडे भी रहना पडे, तो कोई हानि नही। हाँ, मदनगोपालजी अग्रवाल आज कचहरी आए है या नहीं ?'

मनोरंजन की दिलचस्पी के बीच यह प्रश्न बेतुका-सा लगा मुशी जी को। लेकिन अपने अफ़सर के सामने वह विवश था। कहा उसने—'जी नहीं। तैयारी मे व्यस्त होगे वह।'

'अच्छा !' लीलाधर ने कहा—'आज का काम तो खत्म ही है। मैं अब जाता हूँ।' और लीलाधर इजलास से उठकर अपनी कार में बैठ, बँगले की तरफ़ रवाना हो गया।

•

मुशी ने फ़ाइलों को यथास्थान रक्खा और वह भी अपने घर चला गया।

बॅगले पर पहुँच, लीलाधर चाय पीकर आराम-कुरसी पर पैर फैलाकर लेट गया। सिगरेट पीते हुए उसके सामने अपने मुशी का चित्र घूमने लगा। एक अधेड व्यक्ति, जिसमें तरुणाई की कोई झलक भी शेष नहीं। लम्बी दाढ़ी, जो सन की तरह सफ़ेद हो चुकी है। पिचके हुए गाल, जो इस दाढ़ी के अभाव में शायद उसकी अधेड़ अवस्था का आकर्षणहीन रूप व्यक्त करने मे ही अधिक सहायक होते। दो धॅसी हुई आॅखें, जिन पर सेलूलाइड के फ्रेम से मढ़ा हुआ चश्मा यह प्रकट नहीं होने देता कि अवस्था कितनी ढल चुकी है। और तभी लीलाधर को याद आई इस मुशी की वह पुलक-विभोर मुद्रा जो तीन कुमारियों के नृत्य की प्रशसा सुनकर अधीरता से भर उठी थी।

लीलाधर ने स्वीकार किया कि नृत्य और संगीत वास्तव मे वह ललित कला है, जो मानव के अन्तर्तम को भी पुलक-विभोर कर देने की क्षमता रखती है। लेकिन इस मुशी की मुद्रा पर जो भावनाएँ उसने पढ़ी थीं, वे इस कला की महत्ता को स्वीकार न कर, एक मानसिक वासना को ही उभाडने की सूचक थीं। और इस मुशी मे ही यह दोष हो, सो बात नहीं। यह मानसिक वासना आज के युग मे जहरीली हवा की तरह तमाम वातावरण मे व्याप्त हो चुकी है। संगीत और नृत्य के किसी भी प्रदर्शन मे दर्शको की जा रेल पेल दीखती है, उसमे से अधिकाश दर्शक इसी मानसिक वासना के शिकार रहते है। किसी कुमारी का नृत्य देखा नहीं कि उस कुमारी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के परिचालन पर उनकी दृष्टि चली जाती है और मानसिक व्यभिचार की अग्निशिखा से वे भस्म होने लगते हैं। कला का मूल्याकन उनका ध्येय नहीं होता। परपीड़ा कम करने मे सहायता का

दृष्टिकोण उनके सामने नहीं होता। ऐसे प्रदर्शनों के मूल मे जिस पावन अनुष्ठान की पृष्ठभूमि रहती है, उस पर भी इनका दूषित मन और कलुषित तन द्रवित नहीं होता।

जनता के इस नैतिक पतन पर—ऋषियों की सन्तान होने का दावा करनेवाले भारतीयों के इस परिवर्त्तन पर—लीलाधर को एक खीझ होने लगी। अविदित तौर पर उसने स्वीकार किया कि यह सब पाश्चात्य जनता के सम्पर्क में रहने का, उससे प्रभावित होने का और उसके तौर-तरीकों का अनुकरण करने का ही परिणाम है।

लीलाधर ने एक बार चाहा कि वह आज के इस सगीत और नृत्य-प्रदर्शन मे नहीं जाएगा। वहाँ जाकर वह ज़हरीले वातावरण मे बैठकर अपना समय बर्बाद नहीं करेगा। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे स्मरण आया कि अग्रवालजी को वह वचन जो दे चुका है! दिए हुए वचन का निर्वाह उसे करना ही होगा। फिर दूसरों की मनोवृत्तियों से उसे मतलब ही क्या? बङ्गाल मे अकाल-पीडितों की सहायता के नाम पर यह प्रदर्शन जब हो रहा है, तो उसे जाना ही होगा और यथा-सम्भव सहायता का हाथ भी बढ़ाना होगा।

सन्ध्या समय और दिनों की अपेक्षा आज कुछ पहले ही उसने भोजन कर लिया और रात्रि मे ठीक नौ बजे सङ्गीत और नृत्य-प्रदर्शन देखने के लिए मदनगोपालजी अग्रवाल के घर जा पहुँचा।

●

६

तीन घण्टे का समय कब, कैसे बीत गया—लीलाधर को इसका पता नहीं। नृत्य और संगीत का प्रदर्शन लीलाधर ने आज पहली बार ही देखा हो, सो बात नहीं। इसके पहले भी वह ऐसे अनेक प्रदर्शन देख चुका है। लेकिन रात को एक बजे अपने बॅगले पर वापस आकर आज लीलाधर एकदम सो नहीं सका। बिस्तर पर लेटे-लेटे उसका अवचेतन मन उसी नृत्य और सगीत-प्रदर्शन का अनुभव करता रहा, जिसे देखकर वह अभी-अभी लौटा है। उसके चेतन मन ने जो-कुछ देखा-सुना था, उसका प्रभाव अब तक उसके रोम-रोम मे व्याप्त था।

लीलाधर को यह विश्वास था कि बंगाल से आई हुई पार्टी द्वारा अभिनीत नृत्य और संगीत का प्रदर्शन, औसत दर्जे के ऐसे प्रदर्शनों से सर्वथा भिन्न होगा—असाधारण भी होगा। लेकिन कभी-कभी हमारे विश्वास के विपरीत भी घटनाएँ हो जाती है। लीलाधर को प्रसन्नता थी कि उसका विश्वास गलत नहीं था। अपने इस विश्वास के ग़लत सिद्ध हो जाने की यदि कोई गुंजायश थी, तो यही कि अकाल-

पीड़ितों की सहायता के लिए किए जानेवाले प्रदर्शन मे कलात्मकता कम और व्यावसायिकता अधिक हो सकती है। परन्तु उसके इस विश्वास को जब आज कोई ठेस नहीं पहुँची, तो उसे एक आन्तरिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

उसके विश्वास की पृष्ठभूमि बहुत ही पुष्ट थी। कवीन्द्र रवीन्द्र जैसे अमर कलाकार ने जिस बगाल मे, भारत की सत्यम्-शिवम् और सुन्दरम् की भावना को साकार रूप दिया हो, उस बगाल मे भी यदि नृत्य और सङ्गीत की ललित कला सजीव न हो, तो फिर होगी कहाँ? जिसने अपने अमर गीतों की स्वर लहरी से, समस्त ससार को खण्डित मानवता को पुनर्जन्म को सञ्जीवनी का दान दिया हो और त्रस्त एवं पीड़ित मानवता का उद्धार किया हो, उस अमर कवि के प्रातवासियों मे परपीड़न को हलका करने के लिए—अकाल-पीडितों की सहायता करने के लिए—यदि प्रान्त-प्रान्त मे घूमकर अर्थ-सञ्चय करने की भावना न हो, तो और कहाँ होगी?

और अर्थ-सञ्चय का जहाँ तक सम्बन्ध है, लीलाधर को लगा कि किसी भी सार्वजनिक कल्याण की बात कहकर, धर्मप्राण भारतीयों से जब दान-पुण्य के नाम पर काफ़ी धन-सग्रह किया जा सकता है, तब अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए नगर-नगर मे ऐसे प्रदर्शनों की आवश्यकता ही क्या है? जब मानव-मात्र के कल्याण के लिए—विश्व-शान्ति के लिए—लाखों रुपए एकत्र कर महायज्ञो का अनुष्ठान किया जा सकता है और हजारो मन अन्न-घी आदि खाद्य पदार्थों का अग्निकुण्डो मे होम किया जा सकता है, तब क्या बङ्गाल के अकाल-पीड़ितो के लिए, बिना प्रदर्शन के अर्थ-सञ्चय सम्भव नहीं?

लेकिन दूसरे ही क्षण लीलाधर ने स्वीकार किया कि नहीं, यह सम्भव नहीं। यदि बिना प्रदर्शन के यह सब सम्भव होता, तो बङ्गाल की इस पार्टी को नगर-नगर मे नृत्य तथा सङ्गीत के प्रदर्शन

की आवश्यकता ही क्यों पड़ती ? और इसका प्रमाण है, आज का ही प्रदर्शन और तज्जन्य अर्थ-सचय ।

एडवोकेट मदनगोपाल अग्रवाल के बँगले के समाने जो बड़ा-सा मैदान है, वह आज जन-समूह से ठसाठस भरा हुआ था । कहीं तिल-मात्र स्थान रिक्त नही था । अधिक नहीं, तो पॉच हजार से कम उप-स्थिति नहीं थी । आमन्त्रित व्यक्तियों से ही विशाल शामियाना ठसाठस भर गया था । और शामियाने के इर्द-गिर्द खड़े हुए जन-समूह का तो जैसे अनुमान ही नहीं किया जा सकता । उस बड़े-से मैदान मे भी, किसी सिनेमा-हाल की तरह दम घुटने लगा था । लेकिन प्रदर्शन के अन्त मे इन दर्शको से जो आर्थिक प्राप्ति हुई, वह पॉच सौ रुपए से अधिक नहीं थी । लीलाधर ने स्वयम् अग्रवालजी से यह पता लगाया था ।

एक आन्तरिक क्षोभ से भर उठा था लीलाधर । उसने स्वयम् पचास रुपए दिए थे । उसके अन्य अनेक परिचित आफ़ीसरों ने भी इसी तरह की रकमे प्रदान की थीं—किसी ने पन्द्रह रुपए, तो किसी ने पच्चीस । इसके अतिरिक्त अग्रवालजी ने एक सौ एक रुपए दिए थे । लेकिन इन सभी रकमों और स्फुट प्राप्ति का योग पॉच सौ रुपए से अधिक नहीं हुआ ।

पाँच कैण्डिल पावर के हरे बल्ब के मद्धिम प्रकाश मे, लीलाधर अपने कमरे की छत की कड़ियाँ देख रहा था और सोच रहा था यही सब बातें । भारतीयों की धार्मिकता पर उसे मन-ही-मन तरस आ रहा था । विश्व-शान्ति के नाम पर हज़ारों मन खाद्य सामग्री का होम करनेवाले, अपने ही देश के अकाल-पीड़ितों के लिए जब कोई दान नहीं दे सकते, कोई सहायता नहीं दे सकते और मानवता का कोई परिचय नहीं दे सकते, तब महायज्ञों का अनुष्ठान ढोंग नहीं तो क्या है ? मानवता का यह कैसा परिहास-है ! मानव का पाखण्ड !

नृत्य और संगीत का प्रदर्शन देखनेवालों की भीड़ मे लीलाधर ने देखा था, कितने ही त्रिपुण्डधारी और मन्दिरों के पुजारी भी थे। संगीत की आत्मा को, संगीत की लहरों को और सगीत के रहस्य को भले ही ये लोग न समझ सकते हों, लेकिन कुमारियों के नृत्य की एक-एक भाव-भगिमा पर इन लोगों का पुलक प्रकम्प देखते ही बनता था। जिन तीन कुमारियों के नृत्य-कौशल की तारीफ, लीलाधर के मुशी ने दोपहर मे ही की थी, वे निश्चय ही प्रशसा की अधिकारिणी है। उनका नृत्य एकदम कलात्मक था। मानव-मन के किसी गहनतम अँधेरे कोने मे, उनके नृत्य से प्रकाश की किरणे पूजीभूत होकर जगमगाने लगती थीं— एक नवजीवन का सचार कर देने की क्षमता रखती थीं। उनके पायल की झनकारों से आसपास का समस्त वातावरण मुखरित हो उठता था—मानव-मात्र को आत्मविभोर कर देने में वे अपना सानी नहीं रखती थीं।

लेकिन कला की आत्मा को परखनेवाले उस भीड़ मे कितने थे? लीलाधर इस प्रदर्शन मे जहाँ इस कलात्मक किरण-वेला से आनन्द-विभोर हो उठता था, वहीं दर्शकों की मनोभावनाओं को पढ़कर एक आन्तरिक क्षोभ से भर-भर उठता था। उसने स्पष्ट अनुभव किया था कि अधिकाश दर्शक नृत्य और सगीत के कलात्मक कौशल पर नहीं, प्रत्युत उन तीन कुमारियो के रूप-लावण्य पर ही पुलक-विभोर हो रहे थे। उन कुमारियो की आकर्षक वेश-भूषा इन दर्शकों को मन्त्र-मुग्ध-सा कर रही थी। उनके कोमल अगों का परिचालन ऐसे रस का संचार कर रहा था, जो इन दर्शकों की मुद्रा पर स्पष्ट अङ्कित था। कितनी ही सफेद दाढ़ियों पर फेरे जानेवाले शुष्कप्राय हाथो को देखकर लीलाधर अवाक् रह गया था। दर्शकों की इस तन्मयता से उसने अनुमान किया था कि अकाल-पीडितों के लिए किए जानेवाले इस प्रदर्शन की सफलता असन्दिग्ध रहेगी : यथेष्ट सहायता मिल जाएगी इस पार्टी

को। लेकिन सहायता का लेखा-जोखा तो एकदम इस अनुमान के विपरीत रहा।

भारतीय जनता के मानसिक धरातल की इस विडम्बना पर लीलाधर बहुत रात तक अभिभूत रहा। अकाल-पीड़ितों की विवशता, दयनीयता और अकिंचनता उसकी आँखों के सामने नाच उठी। अकाल-पीड़ितों के नर-कङ्काल रात की उन सूनी घड़ियों मे जैसे लीलाधर के कमरे मे चीख़ उठे। समाचार-पत्रों मे बंगाल के अकाल सम्बन्धी जो भयावह चित्र उसने देखे थे और हृदय को हिला देनेवाले जो समाचार लीलाधर ने पढ़े थे, वे सब जैसे एक बार फिर सजीव होकर उसे बेचैन करने लगे। कलकत्ता-जैसी महानगरी मे जहाँ एक ओर अतुल धन-राशि के स्वामी, जीवन के वैभव-विलास मे दिन-रात छके रहते और खाने-पीने की चीजें जिनके कुत्ते भी सीधी तरह नहीं खाते, वहीं—उसी कलकत्ते के फुटपाथों पर कितने ही क्षुधार्त्तों को, नालियों मे बिलबिलाते हुए कीड़ों के बीच बहते सड़े-गले अन्न के दो दाने भी तो बराबर नसीब नहीं हो सके। कितने ही क्षुधार्त्तों को वमन से ही अपने पेट की ज्वाला शान्त करने पर विवश होना पड़ा।

उन अर्द्धनग्न अकाल-पीड़ितों को भी लीलाधर नहीं भूल सका, जो फुटपाथों पर वस्त्र और अन्न के अभाव मे तिल-तिलकर अपनी इहलीला समाप्त कर गए। और, अकाल की इन लपटों से झुलसकर उन माँ-बहिनों और बेटियों की विवशता क्या कभी भुलाई जा सकती है, जिन्हे अन्न के मुट्ठी भर दानों के लिए अपना सतीत्व तक खुलेआम लुटा देना पड़ा।

अकाल-पीड़ितों की इस विवशता को लीलाधर बखूबी समझ सकता है; लेकिन इस विवशता का लाभ उठाकर अपनी काम-पिपासा शान्त करनेवाले नर-राक्षसों की पैशाचिकता को वह बिलकुल नहीं समझ पाता। आज के नृत्य और संगीत-प्रदर्शन के सिलसिले मे भी

जब उसने दर्शकों के मानसिक व्यभिचार की एक स्पष्ट झलक अपनी आँखों देखी, तब उसे भारतीय जनता के मानसिक धरातल की विडम्बना को समझते देर नहीं लगी। उसने स्वीकार किया कि जनता को तो अपने मनोरंजन से मतलब है। स्थिति की पृष्ठभूमि पर अवलम्बित कार्य-कारण से उसे कोई मतलब नहीं। यदि यह सब होता, तो जिस प्रदर्शन से जनता ने अपना इतना मनोरजन किया, उसकी तह में घुसकर अकाल-पीडितों की सहायता भी वह दिल खोलकर कर सकती थी। लेकिन इस वास्तविकता से जनता को जैसे कोई मतलब नहीं था।

साधारण जनता का जहाँ तक सम्बन्ध है, लीलाधर को विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। कारण, साधारण जनता के मानसिक धरातल को वह जानता है। लेकिन शिक्षित कही जानेवाली जनता मे भी जब लीलाधर यही सब बातें देखता-सुनता है, तब उसे असीम आश्चर्य होता है। नृत्य और सगीत-प्रदर्शन के सिलसिले मे जब मध्यान्तर हुआ था, तब लीलाधर के पास ही बैठे हुए एक अधेड डिपुटी कलेक्टर ने कहा था—'नृत्य वास्तव मे सुन्दर है—बहुत सुन्दर !'

लीलाधर की तरफ़ मुखातिब होकर जब इन मित्र ने यह कहा, तब लीलाधर ने सहज-सरल भाव से उनका समर्थन करते हुए कहा—'बगाल से आनेवाली पार्टी है न ! होना ही चाहिए।'

और, तब इन श्रीवास्तव ने अपने मन की बात शायद अधिक स्पष्ट करते हुए कहा—'लेकिन एक बात है साहब, इन तरुण कुमारियों का चरित्र एकदम गिरा हुआ होगा।'

लीलाधर को यह बात सुन, एक धक्का- सा लगा, लेकिन दूसरे ही क्षण इन श्रीवास्तवजी के विचारो को पूर्णतः समझ लेने की गरज़ से कहा—'इनके चरित्र से हमे क्या लेना-देना है, भाई ! फिर, यह बात तो ऐसी है, जिसे अधिकारपूर्वक कह सकना आसान नहीं।'

•

'यह खूब कहा आपने तिवारीजी !' श्रीवास्तवजी अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट होते जा रहे थे—'तरुणाई की रंगीनियो मे इस प्रकार के प्रदर्शन, चरित्र का निर्माण नहीं; बल्कि विनाश करने मे ही अधिक सहायक होत है। आपने देखा नहीं, वह 'उर्वशी नृत्य' जो अभी-अभी अभिनीत किया गया था। उसमे एक कुमारी ने उर्वशी के रूप मे, अर्जुन को मोहित करने के लिए कुशल भाव-भगिमा का जो अभिनय किया था, उसका प्रभाव क्या उसके चरित्र पर बिलकुल नहीं पड़ता होगा ? मैं तो कहता हूँ—अधिकारपूर्वक कहता हूँ कि इसका प्रभाव इतनी भयङ्करता से पड़ता होगा कि वह अपने कौमार्य को अक्षुण्ण रखने मे कभी समर्थ न रह सकती होगी।'

'आलोचना कर देना जितना आसान है, वस्तुस्थिति का विश्लेषण और कार्य-कारण को समझ, उसे दुरुस्त करना उतना ही कठिन।' लीलाधर ने कहा—'एक कुमारी जो अपने नृत्य-प्रदर्शन से अकाल-पीड़ित अगणित बहिनों के सतीत्त्व की रक्षा कर रही है, उसकी जितनी ही वन्दना की जाए, थोड़ी है। उसके इस त्याग मे, यदि स्वेच्छा से उसका कौमार्य अक्षुण्ण न भी रह पाता हो, तो हानि क्या है ? उन कुमारियो से तो लाख बार इसका त्याग स्तुत्य कहा जाएगा, जिन्हे विवश-विपन्न होकर अपने सतीत्व का सौदा करना पड़ता है और फिर भी अपना पेट भरने मे सदा दूसरों का मोहताज रहना पड़ता है। दूसरे शब्दो मे यह कह लीजिए कि जिन्हे नर-पिशाचों के इंगित पर उनकी काम-वासना पूरी करनी पडती है, लेकिन इतने पर भी वे न स्वयं अपना पेट भर पाती है, न अपनी दूसरी बहिनों का।'

'तब शायद आप यह कहना चाहते हैं' श्रीवास्तव ने तिलमिला-कर कहा—'कि हमे उस वेश्या की भी पूजा करनी चाहिए, जो अपनी वेश्या-वृत्ति से अनेक प्राणियों का भरण-पोषण करती हो ?'

'आप मेरा मतलब तनिक भी नहीं समझे !' लीलाधर ने कहा—'आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं अपनी पहली बात मे ही दे चुका हूँ। एक बार फिर स्पष्ट किए देता हूँ : वेश्या-वृत्ति करनेवाली और सतीत्व बेचनेवाली विवश-विपन्न कुमारियों मे कोई विशेष अन्तर नहीं। लेकिन जिस कुमारी को लेकर यह प्रश्न खड़ा हुआ है, वह एकदम दूसरी बात है। आपने स्वयं कहा है कि उसका कौमार्य अक्षुण्ण न रह पाता होगा। इसका अर्थ ही यह है कि उस कुमारी की स्वेच्छा पर ही यह सब निर्भर करता है। तरुणाई की रगीनियो के ज्वार को सँभाल न सकने की हालत मे, उसकी स्वेच्छा पर ही तो यह सब निर्भर करेगा न ? तब इसे आप वेश्या-वृत्ति कैसे कह सकते है ? फिर, किसी के कौमार्य की रक्षा होती है या नहीं, इस समस्या पर कोई आलोचना करने के पहले, हमे यह भी तो विचार करना पडेगा कि हम कहाँ तक उसके इस मार्ग मे सहायक अथवा विरोधी है ? यदि हम उसकी सहायता नहीं कर सकते, उसे विपथगा होने से बचा नहीं सकते, तब उसकी आलोचना का हमे अधिकार ही क्या है ? मै पूछता हूँ, यदि हमारे देशवासियो मे अकाल-पीड़ितो की सहायता करने की उदारता होती, तो इस पार्टी को नगर-नगर मे घूमने और यह प्रदर्शन कर अर्थ-संचय करने की जरूरत ही क्यों पडती ? तब क्यों इस कुमारी के कौमार्य की रक्षा पर आपको इतना चिन्तित होना पड़ता और क्यों कलकत्ते के फुटपाथों पर भूख की ज्वालाओं से झुलसती हुई अगणित कुमारियों को अपना सतीत्त्व बेचना पड़ता ?'

इस तरुण डिपुटी कलैक्टर लीलाधर की इन तर्क-सगत बातों को सुन, श्रीवास्तवजी निरुत्तर रह गए। सिर्फ यही कहा—'आपकी बातें तर्क-संगत हो सकती हैं तिवारीजी, लेकिन भारतीय सस्कृति के वातावरण के अनुकूल नहीं।'

'परिस्थितियों के अनुकूल सस्कृति का जामा बदलकर पहनने की

चतुराई से जब तक हम काम नहीं लेंगे, तब तक सदियों से चली आनेवाली संस्कृति की दुहाई देने से हमारा—मानव समाज का—कोई कल्याण सम्भव नहीं।'

इस तर्कसंगत वातावरण का तारतम्य शायद कुछ देर और चलता; लेकिन इसी बीच मध्यान्तर पूरा हो गया। लीलाधर तिवारी और सुशीलकुमार श्रीवास्तव का बहस-मुबाहसा भी समाप्त हो गया। और, इसके बाद जब प्रदर्शन का कार्यक्रम समाप्त हुआ, तब रात अधिक बीत जाने के कारण सभी को अपने अपने घर लौट जाने की ही धुन रही।

पलंग पर लेटा हुआ लीलाधर इन्हीं सब बातों को लेकर उलझ रहा था कि दीवार-घड़ी ने टन्-टन् कर तीन बजने की सूचना दी। लीलाधर को अब जैसे होश आया कि जिन बातों को लेकर वह इतना उलझ रहा है, उन सब पर फिर कभी वह विचार कर सकता है। आज की ही रात, इन बातों को लेकर समाप्त कर देने की आखिर जल्दी क्या है? सिर पर दोनों हथेलियाँ फेरकर उसने अपने बड़-बड़े बालों को सहलाया और करवट लेकर सो जाने का वह उपक्रम करने लगा। कुछ देर में उसे अपने इस उपक्रम में सफलता भी मिल गई—खर्राटे भरकर वह गहरी नींद लेने लगा।

●

७

रात को बहुत विलम्ब से सो सका था लीलाधर। इसीलिए नित्य की तरह आज उसकी नींद ठीक छः बजे नहीं टूटी।

लीलाधर का चपरासी बरामदे मे पड़ी हुई बेंच पर आकर सदा की तरह बैठ गया। रसोइया भी नित्य की तरह चाय-नाश्ते की तैयारी करने मे छः बजे से ही व्यस्त हो गया। लेकिन जब सात बजे तक लीलाधर नहीं जागा, तो वह भी बाहरी बरामदे मे आकर चपरासी के साथ गपशप करने लगा।

चपरासी ने रसोइया से पूछा—'साहब अभी तक नहीं जागे आज ?'

'रात में बहुत देर से लौटे थे।' रसोइया ने कहा।

'नाच-गाना था भी कमाल का !' चपरासी ने कहा—'तुम गए थे या नहीं ?'

'कहाँ भाई! मालकिन होतीं, तो शायद चला भी जाता। फिर बड़े आदमियों के नाच-गाने मे हम-जैसे मामूली आदमी को जाना भी तो नहीं चाहिए।'

'तुम भी पूरे घोंघा रहे महराज !' चपरासी ने कहा—'अरे, वहाँ जाकर हमे मालिकों के साथ बैठना था क्या ? कहीं भी, किसी भी कोने में खडे होकर देख सकते थे नाच-गाना। मैं तो गया था और बड़ा मजा आया, भाई !'

'तुम्हारी बात और है।' रसोइया ने कहा।

'क्यों ? जैसे तुम नौकर, वैसे हम !'

'नहीं, यह बात नहीं। तुम रहते हो अपने घर मे, और मैं रहता हूँ साहब के घर मे। तुम ठहरे सिर्फ इजलास के चपरासी; लेकिन मैं ठहरा उनका चौबीसों घण्टे का नौकर। साहब के लौटने के पहले उनके सोने की, उन्हे पानी पिलाने की और सिगरेट देने की कितनी ही चिन्ताएँ मुझे करनी पड़ती है। यदि मैं भी साहब के साथ जाता, तो यह सब किसका बाप करता ?'

'मैंने कहा न, तुम पूरे घोंघा हो ! अरे, कुछ समय पहले वहाँ से सटक-सीताराम हो जाते और घर आकर सब इन्तजाम कर लेते !'

'नाच-गाने की मजलिस छोड़कर यह खबर किसे रहती कि कब खसकना चाहिए।'

'हाँ भई, यह तो पते की बात कही तुमने। फिर, कल का नाच-गाना था भी ऐसा कि उसे छोड़कर आना शायद सम्भव न रहता।'

नाच-गाने की रसात्मक बातचीत शायद अब प्रारम्भ होनेवाली ही थी कि भीतरी कमरे का दरवाज़ा खुलने की आवाज़ आई। रसोइया ने चौकते हुए कहा—'साहब जाग गए।' और फौरन भीतर चला गया वह।

'आज बहुत देर हो गई जागने मे, महराज !' लीलाधर ने रसोइया से कहा—'फिर भी आँखे जल रही हैं।'

'रात को बहुत देर से सोए थे न !' रसोइया ने कहा—'नींद पूरी नहीं हुई आपकी।'

'हाँ, यही बात है।' लीलाधर ने कहा—'कोई आया तो नहीं था?'

'जी नहीं।' रसोइया ने कहा—'वही अर्दली आकर बैठा है।'

'अच्छा, उससे कह दो कि डाक लेने वह चला जाए।' और लीलाधर जाकर अपना हाथ-मुँह धोने लगा।

रसोइया से साहब का आदेश पाकर, चपरासी डाक लेने चला गया।

चाय पीकर लीलाधर, बैठकखाने मे आराम-कुरसी पर बैठकर आज के अखबारों मे उलझ गया। एक स्थानीय अखबार में रात के सङ्गीत और नृत्य-प्रदर्शन की खबर भी छपी थी। इसमे खूब प्रशसा थी बंगाल की उस पार्टी की। लेकिन उन तीन कुमारियों के नृत्य की ही खुलकर प्रशसा की गई थी। पार्टी की सफलता का श्रेय इन्हीं तीन कुमारियो को दिया गया था।

जिस बात को लेकर रात मे लीलाधर नृत्य और सगीत-प्रदर्शन से लौटकर तीन बजे तक उलझा रहा—जिस बात को लेकर प्रदर्शन के शामियाने मे ही सुशीलकुमार श्रीवास्तव से वह काफ़ी बहस-मुबाहसा करता रहा, वही बात फिर सामने आ गई। उसने स्वीकार किया कि आज के बुद्धिजीवी मानव के मनोरञ्जन का केन्द्र-बिन्दु नारी ही है। और मजा यह है कि जिस नारी को लेकर आज का मानव अपना पूरा-पूरा मनोरञ्जन करता है, उसी के प्रति वह सबसे ज्यादा सशङ्क भी रहता है। नारी के चरित्र-बल पर, उसके सयम पर और उसके त्याग पर पुरुष-वर्ग को तनिक भी आस्था नहीं। यह कैसी विडम्बना है, कैसी भूलभुलैयाँ!

तभी लीलाधर के सामने रेखा की महिमामयी मूर्ति आ झूली। जिस रेखा के घर वह एक रात का मेहमान रह चुका है और उसके आत्मसयम का पूरा-पूरा आभास पा चुका है, उस रेखा के प्रति भी आज का पुरुष-समाज इन्हीं सब कलुषित भावनाओं से देखता-सोचता

होगा। लीलाधर को लगा कि सुशीलकुमार श्रीवास्तव ने जब उन तीन कुमारियों के प्रति इतनी बड़ी शङ्का प्रकट की थी—उनके सतीत्व के अक्षुण्ण रहने मे पूरा-पूरा सन्देह प्रकट किया था, तब रेखा के साथ मेरे एक रात रहने—एक ही कमरे मे रहने—की बात सुनकर तो शायद वह चौक पड़ेगे ! शायद नहीं, निश्चित रूप से कह उठेंगे कि मेरा और रेखा का सम्बन्ध स्वप्न मे भी पवित्र नही हो सकता। लीलाधर को ऐसे पुरुषों पर क्रोध हो आया।

छिः छिः ! इस बुद्धिजीवी मानव के पतन पर वह क्या कहे ? जब वह स्वय रेखा को देख-पढ़ चुका है, तब ऐसे शङ्कालु व्यक्तियों की बात वह सोचे ही क्यों ? ऐसे व्यक्तियों को उसे अपना और रेखा का सम्बन्ध बतलाने की ज़रूरत ही क्या है ? माना कि यह सम्बन्ध अधिक दिनो तक शायद दुनिया की नजरो से छिपाया न जा सकेगा। लेकिन दुनियावालों की धारणा से उसे मतलब क्या ? जो जैसा चाहे, अपनी धारणा बनाने के लिए स्वतन्त्र है। काफिला चला ही जाता है, कुत्ते भूँकते ही रहते है। जब तक उसका स्नेह-सम्बन्ध पवित्र है, दुनिया की उसे चिन्ता नहीं।

इसी बीच चपरासी ने लाकर आज की डाक लीलाधर के सामने एक छोटी-सी मेज पर रख दी।

लीलाधर अपनी विचार-धारा से मुक्त होना चाहता था, सो यह डाक देखकर उसे गहरा सन्तोष हुआ। एक ही बात को लेकर उलझे रहने मे मन की खीझ इतनी बढ़ जाती है कि कभी-कभी मानव स्वतः उससे मुक्त होने के लिए छटपटाने लगता है। कल प्रभात से लेकर आज अभी तक लीलाधर उसी नृत्य और सगीत तथा तीन कुमारियों की बात लेकर बेहद उलझा रहा। इसलिए यह डाक देखकर उसे मन-ही-मन एक सन्तोष का अनुभव हुआ।

सरकारी डाक के अतिरिक्त एक पत्र आज गोरखपुर से भी आया।

है। लिफ़ाफे पर लिखे पते को देखकर; लीलाधर ने समझ लिया कि यह लिपि उसकी बहिन—लता—के हाथ की है। ललककर लीलाधर ने इस लिफ़ाफ़े को खोला और एक सॉस मे ही पूरा पत्र पढ गया। लता ने और सब बातों के अतिरिक्त अपनी भाभी अलका के सम्बन्ध मे भी दो-चार शब्द लिखे है: 'भाभी—अलका—भी प्रसन्न है। हम दोनों नित्य ही आपकी याद कर लिया करती है।' और अन्त मे लिखा है: 'आपने पन्द्रह दिन के बाद आने की बात कही थी। लिखिए, आप आ रहे हैं या नहीं? यदि स्वयम् न आ सके तो पिताजी को लिख दे कि भाभी को लेकर मैं आ जाऊँ।'

सचमुच गोरखपुर से आए आज लीलाधर को दसवॉ दिन है। आगामी शनिवार को उसे फिर गोरखपुर जाना चाहिए। तब तक पन्द्रह दिन पूरे हो जाएँगे। वह नहीं जाएगा, तो माताजी को शायद बुरा लगे। लेकिन अभी पूरे चार दिन बीच मे हैं। और यही सब सोचते-विचारते उसने बहिन का पत्र सँभालकर कमीज की जेब मे रख लिया।

डाक मे आए हुए सभी पत्र वह अब तक पढ़ नहीं सका था। लता के पत्र मे दस-पॉच क्षणों के लिए वह उलझ जो गया था। अब उसकी नजर दूसरे पत्रो पर जा अटकी। कितने ही पत्र ऐसे थे, जिन पर लिखे पतो की लिपि से वह एकदम अपरिचित था। लेकिन दूसरों की तरह, अपरिचित लिपि मे लिखे गए इन पत्रों को देख, उसके मन मे किसी तरह की जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती थी। इसका एक कारण था। नित्य ही ऐसे अनेक पत्र उसके पास आते रहते थे। और, ऐसे पत्र व्यक्तिगत न होकर अधिकतर सरकारी काम-काज से सम्बन्ध रखनेवाले ही होते थे।

परन्तु आज की डाक मे हलके हरे रग का एक लिफ़ाफ़ा देख, लीलाधर की जिज्ञासा प्रबल हो उठी। इस हरे लिफ़ाफ़े पर उसका

नाम लिखा हुआ था—बहुत ही सुन्दर और आकर्षक लिपि में। लिपि को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि किसी महिला ने वह पता लिखा है। फिर, सरकारी काम-काज से सम्बन्ध रखनेवाले अधिकाश पत्रों पर लीलाधर का नाम नहीं लिखा रहता था। लखनऊ का वह सब-डिवीजनल आफ़ीसर है, अतः पत्रों पर बहुधा यही सरकारी पता रहता है। जिन कुछ पत्रों पर उसका नाम लिखा आता था, उनकी लिपि से आज तक कभी यह भासित नहीं हो सका कि किसी महिला ने कोई पत्र भेजा है। यही कारण था कि आज यह हरा लिफाफा उसकी जिज्ञासा का केन्द्र-बिन्दु बन गया।

लीलाधर ने उत्सुकतापूर्वक यह हरा लिफाफा खोला। सबसे पहले पत्र लिखनेवाले का नाम उसने देखा, तो वह चौंक उठा। रेखा का पत्र था यह। पत्र लम्बा-चौड़ा नहीं था। दस-पाँच पंक्तियाँ ही उसमें लिखी गई थीं। एक साँस में ही लीलाधर उसे पढ़ गया :—

"आप उस दिन आँधी की तरह आए और तूफ़ान की तरह चले गए। मुझे अपनी संस्कृति पर लज्जा आती है और गर्व भी होता है। लज्जा इसलिए कि मैं आपका कोई स्वागत नहीं कर सकी। गर्व इसलिए कि अचानक आकर आप न केवल मेरा यथार्थ रूप देख सके, बल्कि मेरी यथार्थ स्थिति भी समझ चुके होंगे। कृत्रिमता से मुझे सख्त नफ़रत है। आपके आत्मीय स्नेह का जो आभास मैंने पाया है, वह सदा अक्षुण्ण रहे, तो मुझे सच्ची प्रसन्नता होगी। स्नेह का यह पावन सूत्र कभी कच्चा धागा साबित न हो, यही कामना है।

"इधर मेरा एक उपन्यास 'कच्चा धागा' अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। एक प्रति भेज रही हूँ। नहीं जानती, आप लोग इसे पसन्द करेंगे या नहीं। लेकिन भेंट देनेवाले को यह चिन्ता ही क्यों हो! बहिन लता और-अलका के साथ आपको सस्नेह नमन।

स्नेहशीला,
रेखा"

एक बार पत्र पढकर लीलाधर को शायद सन्तोष नहीं हुआ। फिर दूसरी बार उसे पढा। यह रेखा पहले से ही लीलाधर के लिए कम कौतूहल की वस्तु नहीं है। अब इस पत्र के साथ, वह कौतूहल कई गुना अधिक हो गया।

आज की डाक मे आए हुए पत्रों से अलग—मेज पर—काँच के एक 'पेपर वेट' से दबाकर यह पत्र लीलाधर ने रख दिया। फिर, उत्सुकतापूर्वक बची हुई डाक मे उसने रेखा के उपन्यास को खोज लेना चाहा। इसके लिए उसे अधिक प्रयत्न नहीं करना पडा। राज्य सरकार के दफ्तर से आए हुए दो-चार लम्बे-लम्बे और भारी-भरकम लिफाफो तथा कुछ अगरेजी दैनिक और साप्ताहिक पत्रो के पैकिटों के बीच एक पैकिट, रेखा के हाथ का लिखा हुआ पता अपने वक्ष पर चिपकाए हुए जैसे साफ बतला रहा था कि यही रेखा की भेट है—रेखा का उपन्यास।

लीलाधर ने शीघ्रता से पैकिट खोला। तिरगे और आकर्षक आवरण को उसने ध्यानपूर्वक देखा। ऊपर की तरफ़ किसी कुशल चित्रकार की तूलिका से अत्यन्त सुन्दर और बडे अक्षरों मे लिखा था—'कच्चा धागा' और नीचे की तरफ़ अपेक्षाकृत कुछ छोटे अक्षरों मे अङ्कित था उपन्यास-लेखिका का नाम 'कुमारी रेखा'। बीच के हिस्से मे खुले आसमान के नीचे सन्ध्या के डूबते हुए निस्तेज सूरज का गोला, क्षितिज पर अपना आलोक समेट रहा था। एक वृक्ष के नीचे एक सुन्दर तरुणी बैठी हुई एक धागे के दो छोरो का अपने दोनो हाथो से खींचकर शायद यह देख रही थी कि वह धागा एकदम कच्चा है अथवा पक्का। और, आसमान मे दो विहग-बटोहा क्षितिज की तरफ़ समानान्तर उडे जा रहे थे।

इस भावपूर्ण आवरण-चित्र को देखकर लीलाधर विस्मय-विमुग्ध-सा रह गया। वह रेखा को बहुत निकट से देख चुका था, उसे बहुत-

कुछ समझ भी चुका था। इसीलिए उसे लगा कि यह आवरण-चित्र इस उपन्यास का प्रतिबिम्ब तो होगा ही—होगा इसलिए कि अभी उसने इसे पढ़ा नहीं है—लेकिन रेखा की भाव-धाराओं और उसकी मनोदशा का भी स्पष्ट प्रतिबिम्ब है।

औसत दर्जे की कुमारियों से, रेखा मे जिस असाधारणता की झलक लीलाधर ने देखी थी, उसका कारण आज वह समझ सका। रेखा जब एक लेखिका है—उपन्यास लेखिका है—तब उसकी गति-विधि मे असाधारणता होनी ही चाहिए। जो अपने मनाभावों के अनुकूल एक नवीन सृष्टि का सृजन कर सकता है, अपने उपन्यास के कल्पित पात्रों मे जीवन का राग-रंग भर सकता है, और उनकी मनोदशा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर पाठको को अविदित तौर पर यह समझने का मौका न देने मे सफलता प्राप्त कर सकता है कि वे किसी कल्पित दुनिया के पात्रों की गाथा पढ़ रहे हैं, उसे असाधारण होना ही चाहिए।

लीलाधर को गर्व का अनुभव हुआ कि यह उपन्यास लेखिका—रेखा—उसके बहुत निकट है, उसे अपना स्नेहपात्र भी समझती है। रेखा अपने इस उपन्यास मे कहाँ तक सफल हुई है, यह तो लीलाधर तभी समझ सकेगा, जब वह इसे पूरा पढ़ लेगा; लेकिन रेखा की सफलता पर उसे सन्देह नहीं है। उसकी नपी-तुली सी बातें, उसके चरित्र, बल की झाँकी और उसकी व्यवहार-कुशलता को लीलाधर जहाँ तक समझ सका है, वह सब उसकी पैनी बुद्धि का ही परिचायक है।

उपन्यास को भी उसने रेखा के पत्र पर ही सहेजकर मेज पर रख दिया। इजलास से लौटकर तृतीय पहर मे तो उसे समय नहीं; लेकिन क्लब से लौटकर वह सोने के पहले आज इस उपन्यास को अवश्य पढ़ेगा। उसे आज पढ़ना ही होगा। बिना पढ़े वह रेखा को इस सम्बन्ध में लिखेगा क्या? सिर्फ धन्यवाद-सूचक पत्र वह लिखना

नहीं चाहता। वह तो उपन्यास को पढ़कर उसकी सफलता-असफलता पर भी कुछ लिखेगा रेखो को। रेखा ने भी तो यही जानना चाहा है।

अब लीलाधर ने आज की डाक इतमीनान के साथ देखी और तमाम सरकारी डाक उस 'अटैची केस' मे रख दी, जिसे वह अपने साथ इजलास ले जाता है।

८

भोजन कर लेने के बाद लीलाधर जब इजलास जाने की तैयारी मे अपनी पोशाक बदल रहा था, तभी चपरासी ने आकर खबर दी कि एक सब-इन्सपेक्टर पुलिस मिलने के लिए आए है।

'क्या नाम है उनका ?' लीलाधर ने पूछा।

'सोमेश्वर सिह !' चपरासी ने कहा।

'बैठकखाने मे उन्हे बैठने दो। कपड़े पहनकर मैं अभी आता हूँ।' लीलाधर ने कह दिया।

सोमेश्वर सिंह लखनऊ से पन्द्रह मील की दूरी पर उत्तर की ओर एक गाँव मे पुलिस का सब इन्सपेक्टर है। यह पुलिस-स्टेशन लखनऊ सब-डिवीजन मे ही है। और, सब डिवीजनल आफ़ीसर होने के नाते लीलाधर के पास सोमेश्वर सिह को अक्सर आना पड़ता है। इस पुलिस-स्टेशन की सीमा मे जितने भी गॉव है, उनकी गति-विधि और सुरक्षा आदि का दायित्व लीलाधर पर ही है।

कपडे पहन लेने पर लीलाधर अपने बैठकखाने में गया, तो सोमेश्वर सिंह ने कुरसी से उठकर अदब के साथ लीलाधर को फौजी ढग का सलाम करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन किया।

सफल नहीं हुआ। लोग अपने-आप दुर्घटनाओं के शिकार होने लगे।' अपने खुले सिर के बालों को एक हाथ से सहलाते हुए लीलाधर ने कहा—'मैं जानता हूँ, इस मामले मे शहर के ही तरीके देहात मे भी अपनाने पड़ेगे। वहाँ भी कूपन चालू कर दिए जाएँ, तो यह भीड़ अपने-आप कम हो जाएगी और इस प्रकार किसी की जान न जाएगी।'

'कूपन का तरीका बहुत अच्छा होगा।' सोमेश्वरसिंह ने लीलाधर के प्रस्ताव का समर्थन किया।

'लेकिन एक दिक्कत फिर सामने आएगी।' और सोमेश्वर सिंह की तरफ़ लीलाधर ने ध्यानपूर्वक देखा।

'वह क्या ?'

'कफ़न की दिक्कत !' लीलाधर ने कहा—'कूपन चालू कर देने पर, फिर किसी को कफ़न भी बिना कूपन के न मिल सकेगा।'

इसके बाद लीलाधर अचानक चुप हो गया—मानो किसी गहन विचारधारा में डूबने-उतराने लगा। दो-तीन मिनट के बाद कहा लीलाधर ने—'सन्देह नहीं, सोमेश्वरजी, हम लोग भयंकर समय से गुज़र रहे हैं। इस अभागे देश में—भाग्यहीन भारत में—हम देख रहे हैं कि युद्धजन्य अभिशापों का ताण्डव अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है। माना कि युद्ध समाप्त हो चुका है; लेकिन युद्धजन्य संकटों का तारतम्य दिन पर दिन बढता ही जा रहा है। काफ़ी समय लगेगा यह सब संकट दूर होने मे।'

'और, जब तक यह सकट दूर होगा' सोमेश्वर सिह ने अपने आफ़ीसर का रुख देखकर कहा—'तब तक पता नहीं, कितने प्राणों की बलि चढ़ चुकेगी, हुज़ूर ! खाने-पीने की चीज़ों के अभाव मे ही तिल-तिलकर मरनेवालों की रोमाचकारी कहानियाँ किसी से छिपी नहीं हैं। अब यह वस्त्र-संकट का चीत्कार भी हमारे कानों के पर्दों को फाड़ने लगा है और देश की भयावह स्थिति का डंका पीटने लगा है।' फिर

एक क्षण रुककर कहा—'हुजूर ने अभी-अभी जो कुछ कहा है, वह बिलकुल दुरुस्त है। जिस देश मे कपड़ों के अगणित कारखाने रात-दिन वस्त्र तैयार करने मे व्यस्त रहते हों, जिस देश मे कपास आवश्यकता से अधिक पैदा होता हो, उस देश के निवासियों को कफ़न भी मयस्सर न हो—मरने पर मृत देह को लपेटने के लिए पॉच गज कपड़ा भी उपलब्ध न हो—उस देश को अभागा नहीं, तो और क्या कहा जाए? और, यह सब जा हो रहा है, युद्धजन्य अभिशाप नहीं, तो और क्या है?'

'अच्छा, आप इजलास मे मेरे पास आइए। कूपन चालू करने के सम्बन्ध में कलेक्टर से मिलकर ही मैं कोई निर्णय कर सकूँगा और आपको सूचना दूँगा।'

लीलाधर का हुक्म पाकर, सोमेश्वर सिंह ने फिर फौजी ढंग का सलाम किया और बैठकखाने से वह बाहर चला गया।

यह बात नहीं कि लीलाधर वस्त्र संकट की समस्या पर अब कोई बात नहीं करना चाहता था। नहीं; इस प्रसग के छिड़ने पर देश के दुर्भाग्य पर लीलाधर का हृदय एकदम विचलित हो उठा है। लेकिन सरकारी अफसर होने के नाते, वह इतना समझता है कि जो भावनाएँ उसके हृदय में उद्वेलित हो उठी हैं, उनकी अभिव्यक्ति पुलिस सब इन्सपेक्टर के सामने वाछनीय नहीं। इसीलिए उसने सोमेश्वर सिंह को चले जाने का संकेत कर देना ही ठीक समझा।

लीलाधर बखूबी स्वीकार करता है कि युद्धजन्य अभिशापो को कम करने का दायित्व है हमारी सरकार पर—और, स्वयम् उस पर भी, तथा अन्य तमाम सरकारी अधिकारियों पर भी। यह सच है कि सरकारी अधिकारियों ने और स्वयम् उसने भी, इन अभिशापों को कम करने की दिशा मे अपना कदम भी उठाया है। लेकिन अविदित तौर पर लीलाधर यह भी मानता है कि इस कदम उठाने मे ही या

तो कहीं त्रुटि है, अथवा फिर उठाया हुआ कदम जिस शक्ति से लक्ष्य-विन्दु पर गिरना चाहिए, वह शक्ति इस कदम मे नहीं है।

शक्ति की बात सामने आते ही उसे सोमेश्वर सिंह की उस बात का स्मरण आया, जो उसने अभी-अभी कही थी—'भीड़ पर लाठी-चार्ज करने अथवा इसी तरह के किसी जबरदस्त उपाय का सहारा लेने पर भले ही यह सम्भव कहा जा सके।' लीलाधर को अपने-आप हँसी आ गई! मानो जनता ही दोषी है इस मामले मे! पुलिसवाले इससे अधिक और सोचने-समझने की तकलीफ़ ही भला क्यों करे! उन्हे तो अपने आला अफसरों के हुक्म की तामीली से मतलब है न!

लीलाधर ने स्वीकार किया कि इस दिशा मे सरकार को जो पूरी-पूरी सफलता नहीं मिल सकी, उसके लिए हमारे देश के मुनाफाखोर व्यापारियों को ही सबसे अधिक दोषी कहा जा सकता है। इन व्यापारियो को कुचल देने में यदि पुलिस की शक्तियाँ कामयाब हो सकतीं, तो स्थिति इतनी भयङ्कर शायद न हो पाती।

लीलाधर अपनी विचार-धाराओं मे गहरा उतरता जा रहा था। उसे लगा कि अन्न-संकट को कम करने के लिए भारत के नगर-नगर मे 'राशनिंग' की जो व्यवस्था की गई, वह भी तो पूर्णतः सफल न हो सकी। नगरों मे यह व्यवस्था लागू हुई नहीं कि बाजारों से ये चीजे ही साफ़ गायब होने लगीं। और, इन चीजों को गायब करने की धूर्त्तता मे देश के ही मक्कार और मुनाफाखोर व्यापारियों का हाथ है। इन मुनाफ़ाखोरो में मुनाफ़े का लोभ इतनी भयङ्करता से घर कर चुका है कि मानवता का उनमे नाम भी नहीं रह गया है। लेकिन इन दानवी मुनाफाखोरों को कुचल देने मे पुलिस की शक्तियाँ कामयाब नहीं हो सकीं।

सोमेश्वर सिंह ने कल जिस दुर्घटना के हो जाने की सूचना आज

लीलाधर को दी है, उससे लीलाधर का हृदय एकबारगी हिल गया है। अभी तक बडे-बडे शहरों मे ही ऐसी दुर्घटनाएँ हो जाने की खबरें उसने अखबारों मे पढ़ी थीं, लेकिन अब ये दुर्घटनाएँ देहातों मे भी होने लगीं। अखबारो का स्मरण आते ही लीलाधर को याद आया कि ऐसी दुर्घटनाएँ भी तो देश मे कई स्थानों पर घट चुकी है. जब जीवित मानव को अपने तन की लाज ढकने के लिए गज-भर कपड़ा नहीं मिल सका और इस जीवन से ऊबकर ही उसने अपनी इहलीला समाप्त कर दी। कपड़ा प्राप्त करने के प्रयत्नों से भी बलि, और न मिलने पर भी बलि! लीलाधर का दिमाग़ घूमने लगा।

आत्महत्या करनेवालों पर उसे तरस आया। यह तो मानव की महज नादानी है। इन लोगों को यह भी तो सोचना-समझना चाहिए कि जब जीवित मानव को गज भर कपडा मयस्सर नही, तब भला, मर जाने पर उनके शव की अन्त्येष्टि के लिए पाँच गज कपड़ा कहाँ प्राप्त होगा! उसने स्वीकार किया कि परस्थितियों के घटाटोप मे, परिस्थितियों की असाधारण विषमता मे मानव का विवेक तनिक भी काम जो नहीं करता।

घटनाओं और परिस्थितियों के इस तारतम्य मे लीलाधर के सामने उन शहरों का चित्र भी घूम गया, जहाँ कूपन का तरीका चालू है और कफन के लिए भी सरकारी अधिकारियों के कूपन की जरूरत पड़ती है। अखबारो मे पढ़ी हुई खबरों का स्मरण आते ही लीलाधर का हृदय भर आया। यह कितनी निन्दनीय और दर्दनाक बात है कि एक व्यक्ति अपने किसी आत्मीय को सदा के लिए खोकर, गीली आँखों और भरे हृदय से कपडे की दूकान पर जाता है और पाँच गज कफन माँगता है; लेकिन मुनाफे का लोभी दूकानदार कह देता है—कपड़ा है ही नहीं। यदि कपड़ा रहता भी है, तो दूसरी समस्या उस अभागे

मानव के सामने खड़ी कर देता है कि सरकारी अधिकारी की लिखित आज्ञा लाने पर ही कफन दिया जा सकेगा।

लीलाधर को लगा कि मानव की दानवी वृत्तियाँ शायद पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है! लालच का भूत इन दूकानदारों को पिशाचों से भी गया-बीता बना चुका है। इन व्यापारियों के घर मे किसी का निधन होता होगा, तो क्या किसी सरकारी अधिकारी की आज्ञा लेकर ही ये उसकी अन्त्येष्टि करते होंगे? और तीन रुपये के कपडे का चुपचुप तीस रुपये देनेवाला धनवान् जब इनकी दूकान पर पहुँचता होगा, तब क्या उसके सामने भी ये व्यापारी यही समस्याएँ उपस्थित करते होंगे? हरगिज नहीं। यह सब इन मुनाफाखोरों की मक्कारी है और दानवता की पराकाष्ठा।

कहते है, मरने के बाद भेदभाव की भावना मिट जाती है। मृत मानव के प्रति, उसके दुश्मन के हृदय मे भी एक बार समवेदना का स्रोत फूट निकलता है। लेकिन आज की भयावह स्थिति हम भारतीयों को इतना पतित बना चुकी है कि किसी के घर मे शव रक्खा रहे; कोई आठ-आठ आँसू बहाता हुआ कफन के लिए गिड़गिड़ाता रहे, लेकिन इन व्यापारियों के पत्थर हृदयों मे सहानुभूति अथवा मानवता का तनिक भी उद्‌भव नहीं होता।

इस अभागे देश मे—भाग्यहीन भारत मे—आज यह बेबसी भी हमे देखनी थी। मरने के बाद भी भाग्यहीन भारतीय तो कफ़न के लिए सरकारी आज्ञा प्राप्त करने की विडम्बना झेलनी थी! अमीरी और गरीबी के बीच भेदभाव की यह वज्र-रेखा देखकर हमे अपनी मुसीबतों पर मरने के बाद भी, यह अप्रत्याशित पीडा सहनी थी!

और, लीलाधर ने निश्चय कर लिया कि दूसरे शहरों मे चाहे जो व्यवस्था हो, वह अपने डिवीजन के गाँवों मे कफन के लिए किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रखेगा।...

इजलास मे जाकर आज वह सबसे पहले कलैक्टर से मिला। उनसे आवश्यक बातचीत करने के बाद अपने इलजास मे पहुँचा और सब इन्सपेक्टर सोमेश्वर सिंह को कपड़ों के कूपन देते हुए कहा—'इन कूपनों को आप स्वयम् गाँववालों की आवश्यकता और कपडे की गुजाइश देखते हुए बाँट दे ! मेरा खयाल है कि कूपन जारी हो जाने पर न तो दूकान पर भीड़ होगी और न किसी की बलि चढेगी।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'लेकिन कफ़न के लिए किसी भी व्यक्ति को परेशान न किया जाए। सिर्फ दो गवाह लेकर कफ़न फौरन दिया जाना चाहिए। दूकानदार स्वयम् गवाही लेने का काम करेगा ताकि किसी के घर मे अनावश्यक रूप से शव न रक्खा रहे।'

'इस व्यवस्था पर हुजूर के एहसानमन्द रहेगे—सभी गाँववाले।' सोमेश्वर सिंह ने कहा।

लीलाधर ने इस बात का उत्तर नहीं दिया—जरूरत भी नहीं थी। सिर्फ यही कहा—'अच्छा, अब आप जा सकते हैं। समय मिलते ही मैं स्वयम् आऊँगा किसी दिन, और देखूँगा कि कूपन बाँटने का काम आप किस प्रकार कर रहे हैं।'

'ज़रूर आइए, हुजूर !' सोमेश्वर सिह ने कहा और सलाम करके वह चला गया।

९

आधुनिक युग—कल-युग—का मानव ठीक कल-जैसी व्यस्तता के बीच जीवन की साँसों का भार ढोए जाता है। मशीन का अपना अस्तित्व कहाँ? वह तो दूसरो के नियन्त्रण में ही काम करती है न! आज का मानव भी घड़ी की सुइयों से नियन्त्रित है। घड़ी की सुइयाँ ही आज के मानव पर शासन कर रही है : इस वक्त यह करो, उस वक्त वहाँ जाओ, अब चाय पियो, अब भोजन करो।....

लीलाधर भी इसी कल-युग का एक मानव है—घड़ी की सुइयों द्वारा नियन्त्रित एक मशीन-मात्र। इजलास से लौटकर, सदा की तरह आज भी वह ठीक समय पर क्लब जा पहुँचा। लेकिन क्लब में उसके दूसरे साथी अभी तक नही पहुँचे थे।

यह बात नहीं कि क्लब मे कोई था ही नहीं। लेकिन अपने-अपने साथियों के साथ ही क्लब मे जानेवाले अपना मनोरजन करने के आदी होते हैं। क्यों न हो? मानव कितना ही मशीन की तरह चलनेवाला क्यों न हो जाए, उसकी जन्मजात सामाजिकता

नष्ट नहीं हो सकती। सो, यह लीलाधर अपने साथियों पर खीझ उठा। खीझ उठना स्वाभाविक ही था। दूसरे कितने ही लोग क्लब में तरह-तरह से अपना मनोरजन कर रहे थे। लेकिन अपने साथियों के न आने पर, लीलाधर का मनोरंजन किरकिरा हो रहा था। क्लब के बाहरी बरामदे में जाकर, एक कुरसी पर वह बैठ गया।

लखनऊ के बाहरी भाग मे यह क्लब अवस्थित है। सामने ही—थोड़ी ही दूरी पर—गोमती का तटवर्ती भाग फैला हुआ है। क्लब में बैठा लीलाधर, गोमती का यही दृश्य देख रहा है। गोमती की चौडी धारा पर कितने ही बजरे और नावे धीरे-धीरे सरकती-सी दीख रही थीं।

इस दृश्य से भी दूर—बहुत दूर—लीलाधर की मुक्त दृष्टि दौड़ गई। इस मैदानी भाग मे कहीं कोई ऊँची पहाडी नहीं है। अतः लीलाधर की मुक्त दृष्टि बहुत दूर दीखनेवाले क्षितिज पर जा अटकी। क्षितिज की नीली-सी रेखा उसके क्षणिक आकर्षण का केन्द्र बन गई। पृथ्वी और आकाश का वह एकान्त, किन्तु काल्पनिक मिलन बहुत भला लगा लीलाधर को। लाल-पीले बादलों के छोटे-बडे टुकडे जैसे इस मिलन पर मुग्ध हो, आसमान मे नाच रहे थे।

लीलाधर को लगा कि क्षितिज की यह रेखा कितनी मनोरम और रहस्यमयी है—ठीक किसी रोचक उपन्यास के रगीन अफ़साने की तरह। काल्पनिक होते हुए भी, मानव को अपने आकर्षण मे लीन कर लेने की कितनी क्षमता है इस रेखा मे!

और, रेखा तथा उपन्यास का ध्यान आते ही लीलाधर को याद आ गई वह रेखा, जो उससे दूर—प्रयाग मे रहती है और उपन्यास-लेखिका भी है। क्षितिज की इस रेखा मे और प्रयाग की रेखा मे बहुत कुछ साम्य है। क्षितिज की रेखा को मानव कभी छू नहीं सकता, उसे पा नहीं सकता। प्रयाग की रेखा भी स्नेहमयी होते हुए भी इसी

प्रकार स्पर्श से परे है। विचारों और चरित्र की कठोर और अचल शिला।

इस रेखा ने आज की ही डाक से अपना नव प्रकाशित और पहला उपन्यास 'कच्चा धागा' भी तो लीलाधर के पास भेजा है—भेंट-स्वरूप! लेकिन मशीन की तरह व्यस्त रहनेवाले इस लीलाधर को, दिन में इतना समय ही कहाँ मिला कि उस उपन्यास को उलट-पलटकर थोड़ा-बहुत पढ़ सकता। क्लब से लौट, सोने के पहले उसे पढ़ने का निश्चय उसने अवश्य कर रक्खा है। लेकिन इस क्लब में आकर उसका समय व्यर्थ नष्ट हो रहा है। उसके साथी आज पता नहीं, कहाँ और क्यों उलझ गए? लीलाधर कुरसी से उठ बैठा और अपनी कार में बैठकर क्लब से अपने बँगले की तरफ़ वापस चल पड़ा।

मुश्किल से एक मील का रास्ता पार हुआ होगा कि सामने—सड़क पर—एडवोकेट मदनगोपाल अग्रवाल आते दीख पड़े। लीलाधर को यह देख आश्चर्य हुआ कि अग्रवालजी पैदल आ रहे हैं। एक हाथ में टेनिस का रैकिट था और दूसरे हाथ में साइकिल का हैण्डिल थामे हुए। पास पहुँचकर लीलाधर ने अपनी कार खड़ी कर दी। कार खड़ी हुई नहीं कि अग्रवालजी का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो गया। मुसकराते हुए कार के पास आ गए वह।

'यह साइकिल का शौक कब से हो गया, अग्रवालजी?' लीलाधर ने कार से उतरते हुए पूछा।

'जब से आप लोगों की—मेरा मतलब है, सरकार की—कृपा हो गई।' एडवोकेट अग्रवाल ने कहा।

'शायद आपका मतलब है पैट्रोल पर सरकारी नियन्त्रण हो जाने से!' लीलाधर ने कहा और हँस पड़ा।

'हाँ, साहब! जनता का कष्ट चाहे जितना बढ़ जाए, लेकिन फौज की लारियों को पहले पैट्रोल मिलना चाहिए।'

'वह तो पहली जरूरत है, अग्रवालजी! कम-से-कम आप जैसे एडवोकेट की यह दलील उचित नहीं मालूम पड़ती। यदि मिलिटरी को पैट्रोल न दिया जाए, तो शत्रु पर विजय प्राप्त करने का मार्ग न रुक जाएगा।'

'लेकिन मैं देखता हूँ कि जरूरत से ज्यादा पैट्रोल मिलिटरी को दिया जा रहा है। तभी तो मिलिटरी की लारियाँ व्यर्थ ही देश मे एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक दौड लगाती रहती है, और जनता है कि जरूरी कामो के लिए भी पैट्रोल नहीं पा सकती।'

'क्लब जाना कोई जरूरी काम नहीं कहा जा सकता।'

'क्यो नहीं!' अग्रवालजी ने कहा—'खाने-पीने और अन्य आवश्यक कामों के साथ मनोरजन भी बहुत ज़रूरी है। यदि यह बात न होती, तो फौजी जवानों के मनोरंजन के लिए योरप और अमरीका से तरुण लड़कियाँ बुलवाने की क्यों ज़रूरत पड़ती?'

'लेकिन आपके और फौजी जवानों के मनोरजन की महत्ता एक नहीं।'

'यह तो मै भी जानता हूँ। लेकिन पैट्रोल के अभाव में, क्लब तक पैदल या साइकिल पर आने-जाने के कारण कितने ही दूसरे ज़रूरी काम या तो रुक जाते है, अथवा फिर बहुत विलम्ब से हो पाते हैं।'

'तो यह कहिए कि इसी पैट्रोल की कमी से आज आप साइकिल पर क्लब जा रहे हैं?'

'बिलकुल यही बात है।'

'लेकिन साइकिल पर न चढ़कर, आप तो उसे भी अपने साथ पैदल घसीट रहे हैं।'

'क्या करूँ, साइकिल रास्ते मे ही पक्चर जो हो गई!'

हँसी आ गई लीलाधर को। •

'हम लोगो की परेशानियों पर आप लोग सिवाय हँसी के और दे ही क्या सकते है ?' एडवोकेट अग्रवाल ने अपनी खीझ प्रकट की।

'यह बात नहीं है। मै तो इसलिए हँसा कि पहले ही दिन आपकी साइकिल ने आपका साथ नहीं दिया।'

'इसीलिए तो साइकिल से हम लोग दूर रहना चाहते हैं। लेकिन आप लोग ..।'

'अच्छा, छोड़िए इन बातों को।' लीलाधर ने बीच मे ही टोकते हुए कहा—'मै समझ गया कि इसीलिए आज क्लब पहुँचने मे आपको इतनी देर हो गई। आइए, मेरी कार मे। मैं आपको आपके बँगले पर छोड़ दूँगा। साइकिल को शोफ़र पीछे कैरियर पर रख देगा!'

'लेकिन क्लब ?'

'क्लब अब नहीं चलेगे। देर काफ़ी होते देखकर ही मैं लौट आया हूँ।' और, लीलाधर का सकेत पाकर शोफ़र ने अग्रवालजी की साइकिल को मोटर-कैरियर पर बाँध दिया।

कार मे बैठ, अग्रवालजी लीलाधर के साथ अपने बँगले की तरफ़ चल पड़े। रास्ते मे कोई खास बात नहीं हुई। शायद दोनों ही अपनी-अपनी खीझ से परेशान थे।

अग्रवालजी के बँगले के सामने पहुँचकर लीलाधर ने कार खड़ी कर दी। शोफ़र ने अग्रवालजी की साइकिल को कैरियर पर से उतारा और बँगले के बरामदे मे रख दिया।

एडवोकेट अग्रवाल ने कार से उतरते हुए कहा—'क्या कीजिएगा तिवारीजी, इतने जल्द घर जाकर ? आइए, आपको चाय पिलाऊँ।'

लीलाधर ने कार मे बैठे-बैठे ही कहा—'करने को तो इस समय कुछ भी नहीं। लेकिन यह चाय पिलाने की जो बात आप कह रहे है, क्या कार पर आपको यहाँ तक पहुँचा देने का पारिश्रमिक है ?''

'हम लोग पारिश्रमिक लेने के आदी होते हैं, देने के नहीं। यदि कभी देने का मौका आ ही जाता है, तो बड़ी कृपणता से ही देते है।'

'तब तो इस चाय पिलाने के प्रस्ताव में भी आपकी कृपणता ही सामने आएगी। इसलिए क्षमा चाहता हूँ।'

'लेकिन यह पारिश्रमिक जो नहीं है। हाँ, किसी की आत्मीयता मे भी, यदि आप अपने न्यायाधीश के दृष्टिकोण से कोई दूसरी बात ही समझने के आदी हो चुके हों, तो मुझे कुछ नहीं कहना है।'

'यह सब इजलास मे हो सकता है।' लीलाधर ने कहा—'इजलास के बाहर नहीं।'

'यही बात मेरे लिए भी लागू समझिए।' अग्रवालजी ने कहा—'किसी क्लाइएट से सौदा करते समय ही पारिश्रमिक की बात कही जा सकती है।'

'तब चाय पीनी ही पडेगी।' और मुसकराते हुए लीलाधर अपनी कार से उतरकर अग्रवालजी के साथ, उनके बँगले के बाहरी बरामदे मे जाकर एक कुरसी पर बैठ गया।

अग्रवालजी ने कहा—'दो मिनट के लिए क्षमा चाहता हूँ।' और वह भीतर चले गए।

अपने सिगरेट-केस मे से एक सिगरेट निकाल और उसे सुलगाकर लीलाधर धुएँ की रुपहली रेखाओं का निर्माण करने लगा।

इसी बीच अग्रवालजी बाहर आ गए। उनके हाथ में भी सिगरेट का एक डिब्बा और माचिस थी। उसे लीलाधर के सामने रखते हुए कहा उन्होंने—'यही लेने तो मैं भीतर गया था। लेकिन आप...।'

'पहले ही धूम्रपान करने लगे!' लीलाधर ने बीच मे ही टोक दिया और अग्रवालजी की अधूरी बात पूरी कर दी। फिर एक क्षण रुककर कहा—'आज के मानव की यही तो विशेषता है कि वह किसी-न-किसी काम मे बराबर लगा रहना चाहता है।'

'वाह, साहब !' अग्रवालजी ने कहा और खिलखिला उठे। हँसी शान्त होने पर फिर कहा—'यह आपने खूब कहा ! अरे, सिगरेट पीना भी आप कोई काम समझते है।'

'कितने ही बेकार क्षणों मे यह सिगरेट आज के मानव का बहुत सहायक है, अग्रवालजी !' लीलाधर ने कहा—'चाय और सिगरेट दोनों ही आज इतनी लोकप्रिय हो चुकी है कि भारतीय सस्कृति से अब शायद इन्हे अलग नहीं किया जा सकता।'

'हॉ, चण्डूखाने की गप्पों से किसी तरह कम नहीं है यह बात।' अग्रवालजी ने कहा।

'आप दुरुस्त कहते है, अग्रवालजी !' लीलाधर ने अपनी बात आगे बढ़ाई—'लेकिन मैं देखता हूँ कि आज का बुद्धिजीवी मानव जहॉ रात-दिन यन्त्रवत् चलता रहता है, वहाँ सिर्फ दो काम ही शायद वह ऐसे करता है, जिन्हे सच्चे अर्थों मे 'निष्काम कर्म' कहा जा सकता है।'

'वह क्या ?' अग्रवालजी ने जिज्ञासा प्रकट की।

'चाय और सिगरेट का पीना।' लीलाधर ने कहा—'गीता के चौथे अध्याय मे भगवान् कृष्ण ने उन्नीसवें श्लोक में निष्काम कर्म की व्याख्या करते हुए कहा है :

'यस्य सर्वे समारम्भाः काम सकल्प वर्जिताः
ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं तमाहुः पण्डितम् बुधाः

अर्थात् जिसके सम्पूर्ण कार्य कामना और संकल्प से रहित है, उस ज्ञानरूप अग्नि द्वारा भस्म हुए कर्मोंवाले पुरुष को ज्ञानी-जन भी पण्डित कहते हैं।' और आज के बुद्धिजीवी मानव के अन्य कर्म चाहे कितने ही सकाम क्यों न हों, लेकिन चाय और सिगरेट का पीना एकदम निष्काम ही मानना पड़ेगा।'

अग्रवालजी को जोरों की हँसी आ गई। लेकिन लीलाधर गम्भीर हा—एकदम मौन।

हँसी रुकने पर अग्रवालजी ने कहा—'मालूम पडता है, आज आप गहरे मजाक के 'मूड' मे हैं, तिवारीजी ! सिगरेट और चाय पीने की यह व्याख्या मैंने आज तक नहीं सुनी।'

'अब तो सुन ली !' लीलाधर ने मुसकराते हुए कहा—'मैं देखता हूँ, आज का मानव ठीक कल (मशीन) की तरह चलते रहने का आदी हो चुका है। घड़ी की सुइयाँ आज के बुद्धिजीवी मानव को नियन्त्रित करने लगी है। आज जब मैं ठीक समय पर क्लब पहुँचा और आप गायब रहे, तो एक खीझ से मैं भर उठा।'

'इसीलिए आप क्लब से वापस जा रहे थे अपने घर ?' अग्रवालजी ने पूछा।

'और क्या करता ?'

'लेकिन अब आपकी खीझ तिरोहित हो चुकी है। तभी मजाक का यह 'मूड' उभर पड़ा है।'

इसी बीच अग्रवालजी का नौकर चाय का ट्रे लेकर वहाँ आ पहुँचा। दोनों मित्र चाय पीने लगे। चाय अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि सामने ही अचानक लोगों का शोरगुल होने लगा। एक कच्चे मकान के सामने काफ़ी भीड़ जमा होने लगी।

कार के पास खडे हुए शोफर को लीलाधर ने हाथ के इशारे से अपने पास बुलाया। कहा उससे—'जाकर देखो, यह शोरगुल क्यों हो रहा है।'

शोफर चला गया।

अग्रवालजी ने कहा—'क्या आप चाहते हैं कि कहीं कोई शोरगुल भी न हो और भीड़ जमा न हो ? शायद ठीक ही है। मजिस्ट्रेट है न आप ! अपने कर्त्तव्य का पालन हर वक्त करना ही चाहिए !'

'मजिस्ट्रेट की हैसियत से नहीं, बल्कि साधारण मानव की हैसियत से ही मैं अपनी जिज्ञासा का समाधान करना चाहता हूँ।'

चाय अब समाप्त हो चुकी थी। पास ही खड़े नौकर ने चाय का ट्रे उठाया और भीतर चला गया।

'जिज्ञासा का समाधान मैं यहीं बैठे-बैठे कर सकता हूँ।' अग्रवाल जी ने कहा—'सामने जहाँ भीड़ दीखती है, वह रामदीन ग्वाले का घर है। मियाँ-बीबी मे ठन गई होगी किसी कारण।'

'आपका अनुमान गलत भी हो सकता है।'

'गलत होने की गुंजाइश कम है।'

थोड़ी ही देर मे शोफ़र ने आकर खबर दी—'हुजूर, एक ग्वाले की स्त्री फाँसी लगाकर मर गई है!'

लीलाधर ने अग्रवालजी की तरफ़ गम्भीर मुद्रा से देखा। मानो वह कह देना चाहता था कि देखा, तुमने अपना अनुमान! कितना गलत निकला!

'फाँसी!' अग्रवालजी ने दोहराया, फिर पूछा—'क्यों फाँसी लगा ली? कुछ पता चला?'

'कहते है, उसके पास पहनने के लिए महीने-भर से जनानी धोती नहीं थी। ग्वाला रोज कोशिश करता रहा, लेकिन धोती नहीं पा सका। रोज की तरह आज भी जब ग्वाले को धोती नहीं मिली, तो बेचारी फाँसी लगाकर मर गई।'

'और ग्वाला देखता रहा यह सब?' लीलाधर ने प्रश्न किया।

'शोफर यह सब क्या जाने!' अग्रवालजी ने कहा।

'ग्वाला दूध देने बाहर गया था, सरकार!' शोफर ने अपने मालिक—लीलाधर—के प्रश्न का उत्तर दिया—'लौटने पर उसने देखा, तो वह खुद सिर पीटने लगा, और यह भीड़ जमा हो गई।'

'तुमने देखा है उस स्त्री की लाश को ?' लीलाधर ने फिर प्रश्न किया।

'हाँ, सरकार ! अभी तक उसके गले में फन्दा लटक रहा है। सचमुच उसके तन पर जो धोती है, वह उसके तन की लाज ढँकने के लिए काफ़ी नहीं है !'

'यह वस्त्र-सकट का प्रश्न बहुत ही जटिल होता जा रहा है, तिवारी-जी !' अग्रवालजी ने कहा—'लेकिन आप लोग—सरकारी अधिकारी—इतने पर भी ऐसा कदम नहीं उठाते कि आत्म-हत्याओ की इस रफ्तार मे कोई कमी होने लगे।'

'कदम तो पहले से ही उठाया जा चुका है', लीलाधर ने कहा—'लेकिन बिगड़ चुकी स्थिति के सुधरने मे समय लगेगा।'

'और, अब दूसरी समस्या उस अभागे के सामने अभी आएगी—कफन की ! अग्रवालजी ने मर्माहत होकर कहा।

'सो तो मैं हल किए देता हूँ।' और, सामने की मेज पर से कागज की एक चिट लेकर लीलाधर ने कपडे के एक स्थानीय व्यापारी के नाम आर्डर लिख दिया कि रामदीन ग्वाले को पाँच गज कफ़न दे दिया जाए।

इसके बाद लीलाधर ने कहा—'अच्छा, अग्रवालजी, अब मैं चलूँगा।' और कुरसी से उठकर खड़ा हो गया लीलाधर।

कार तक जाकर अग्रवालजी ने लीलाधर को बिदा करते हुए कहा—'आज का समय ठीक नहीं बीत रहा है, तिवारीजी ! न क्लब मे ही मनोरंजन हो सका और न यहीं बैठ सके काफ़ी देर !'

'कभी-कभी ऐसा ही होता है।' लीलाधर ने कहा, और कार स्टार्ट कर दी अपने बँगले की तरफ़।

सडक पर खड़े वृक्षों पर बढते हुए अन्धकार की गहन कालिमा मे भी कहीं-कहीं पक्षियो का स्वर गूँज रहा था।

लीलाधर एक मानसिक संघर्ष से अभिभूत था। बेचारी ग्वालिन ! पैसेवाले आवश्यकता न होने पर भी कपडे खरीदकर अपने सूटकेस और आलमारियाँ भरते जा रहे है। लेकिन इन मजदूरों और गरीबों को तन की लाज ढँकने के लिए भी कपडे मयस्सर नहीं, और ये बेचारे अपनी इहलीला ही समाप्त किए जा रहे है। इतने पर भी आज का मानव बुद्धजीवी होने का दावा कर रहा है। मानव का यह कितना बड़ा अहम् है !

फिर, उसे स्वयम् पर भी एक खीझ होने लगी। उस ग्वालिन की आत्महत्या की खबर सुन लेने पर भी वह घटना-स्थल पर नहीं गया। शोफर को भेज और खबर पाकर ही उसने सन्तोष कर लिया। लेकिन वहाँ जाकर वह करता क्या ? व्यर्थ ही समय की हत्या होती न ! और समय की हत्या आज के मानव को स्वीकार नहीं। आधुनिक युग—कल-युग—का मानव ठीक कल-जैसी व्यस्तता के बीच, जीवन की साँसों का भार ढोए जाता है न ! मशीन का अपना अस्तित्व कहाँ ? वह तो दूसरों के नियन्त्रण मे ही काम करती है न ! आज का मानव घड़ी की सुइयों से नियन्त्रित जो है।'

बँगले मे पहुँचकर भी लीलाधर इसी घटना को लेकर अभिभूत रहा। किसी काम मे उसका मन नहीं लगा—नहीं लगा।

१०

दो दिन तक लीलाधर का मन किसी काम मे नहीं लगा। रह-रहकर उसे वस्त्र-सकट के कारण होनेवाली आत्महत्याओं का ख्याल आ जाता। दो दिन पहले जब वह एडवोकेट मदनगोपाल के यहाँ चाय पी रहा था, तब अचानक ही उसने जिस ग्वालिन की आत्महत्या का समाचार सुना था और उसके घर के सामने सैकडो की सख्या मे जिस भीड़ को एकत्र देखा था, उस दृश्य ने लीलाधर के मन और मस्तिष्क पर गहरा असर किया था।

इसके पहले भी पुलिस के सब इन्सपेक्टर सोमेश्वर सिंह ने आकर लीलाधर को सुनाया था कि कपडे की दूकान पर जब जनानी धोतियाँ बेची जा रही थीं, तब बेहद भीड़ की रेल-पेल मे एक नवयुवती की इहलीला समाप्त हो चुकी थी। इस दुर्घटना ने भी लीलाधर को बहुत द्रवित कर दिया था। इसी दुर्घटना से द्रवित होकर लीलाधर ने अपने सब-डिवीजन के तमाम गाँवों मे बिना किसी रोक-टोक के कफ़न दिए जाने का हुक्म जारी कर दिया था।

लेकिन ग्वालिन के स्वयम् फाँसी के फन्दे पर लटककर मर जाने की दुर्घटना ने उसे इतना द्रवित कर दिया कि दो दिन तक लगातार वह अभिभूत रहा। सोचता रहा कि कफ़न दिलाने की जो आज्ञा उसने जारी कर दी है, उससे मृत व्यक्तियो की अन्त्येष्टि किए जाने का मार्ग तो साफ हो चुका है। परन्तु जीवित मानव को वस्त्र दिए जाने की जब तक समुचित व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक इन आत्म हत्याओं की रफ्तार मे शायद कमी न होगी। इस पहलू पर बहुत-कुछ सोचने-विचारने पर भी वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका। इस दिशा मे वह जो कुछ सोच-विचार सका, वह था 'कूपन-सिस्टम' का जारी कर देना। अपने सब-डिवीजन के अन्तर्गत जितने पुलिस-स्टेशन थे, उनके सब-इन्सपेक्टरो को उसने सख्त हिदायते भेज दीं कि बिना किसी भेदभाव के तमाम परिवारों को, उनकी आवश्यकता और प्राप्त होनेवाले कपडे के परिमाण का सामजस्य करते हुए, फौरन कूपन दे दिये जाएँ।

दो दिन की मानसिक अभिभूति के बीच यही एक काम ऐसा था जिसे लीलाधर कर सका। दूसरा काम जो कल रात मे, लगभग तीन घण्टे तक जागकर उसने किया, वह है रेखा के भेजे हुए उपन्यास 'कच्चा धागा' का पढ लेना। इस उपन्यास को पढ़कर लीलाधर की मानसिक अभिभूति एकदम तिरोहित हो चुकी है। हलके मनोरजन से ओतप्रोत न होकर रेखा का उपन्यास मानव-जीवन के उतार चढ़ाव के हृदयस्पर्शी चित्रण का एक सुन्दर समन्वय है। आधुनिक युग की समस्याओं और विचार-धाराओ का जो प्रतिबिम्ब इस उपन्यास मे रेखा ने चित्रित किया है, वह उसकी अनुभूतियों का, उसके बारीक अध्ययन का और उसके सुलझे हुए विचारो का एक 'अलबम' कहा जा सकता है। सबसे बड़ा सन्देश जो रेखा ने दिया है, वह है निष्काम कर्त्तव्य किए जाने की लगन। उपन्यास का घटना-शिखर

नायिका की लगन पर एक जबरदस्त प्रहार करता है—उसकी सारी लगन, सारी वाञ्छा और सारी साधना अन्त में 'कच्चा धागा' साबित होकर, पाठकों की समस्त सहानुभूति प्राप्त कर लेती है। यही तो रेखा की—उपन्यास-लेखिका की—चरम सफलता है।...

आज प्रभात-बेला मे चाय पीने के बाद लीलाधर ने अपने यह सब विचार एक पत्र मे लिखकर, रेखा को भेज देने के लिए लिख रक्खे। रेखा को पत्र लिखने के बाद ही उसे खयाल आया कि परसो शनिवार है और उसे गोरखपुर जाना होगा। बहिन लता के उस पत्र का भी तो उसने अभी तक कोई उत्तर नहीं लिखा, जो रेखा के पत्र और उपन्यास के साथ ही तीन दिन पहले आ चुका है। लता का पत्र उठाकर उसने फिर एक बार पढा—'आपने पन्द्रह दिन के बाद आने की बात कही थी। लिखिए, आप आ रहे है या नहीं ? यदि स्वयम् न आ सके, तो पिताजी को लिख दे कि अलका भाभी को लेकर मैं आ जाऊँ।'

बहिन के इस आग्रह मे लीलाधर को अपनी पत्नी—अलका—का भी आग्रह प्रतिबिम्बित दीख पडा। होना ही चाहिए। नव-विवाहिता पत्नी को पति की स्नेहच्छाया मे रहना ही अपेक्षाकृत अधिक सुखद हो सकता है। माना कि गोरखपुर मे लीलाधर के माता-पिता हैं और उनके समीप रहकर उसकी पत्नी को कोई कष्ट नहीं हो सकता। लेकिन दुनिया के सभी सुखो के बीच रहते हुए भी नारी के तन-मन मे, पति के अभाव मे जो एक टीस और वेदना होने लगती है, कौन कह सकता है, अचला इससे मुक्त होगी ?

लीलाधर ने निश्चय किया, वह परसों गोरखपुर अवश्य जाएगा। उसी वक्त उसने लता के नाम भी एक पत्र लिख दिया—शनिवार की रात को वह गोरखपुर पहुँचेगा।

गोरखपुर पहुँचने के सिलसिले मे, लीलाधर को लगा कि प्रयाग

जाकर यदि रेखा से भी वह एक बार और भेट कर सकता, तो ? माघ-मेले के समय लता और अचला के साथ वह रेखा के पास पहुँच नहीं सका था। उस दिन इतना समय ही नहीं था कि वह रेखा के पास जा सकता। न पहुँच सकने की असमर्थता के लिए वह मन-ही-मन बहुत लज्जित हुआ था—शायद दुःखी भी। इस लज्जा और दुःख को कम करने और असमर्थता की कैफियत देने, वह पिछली बार अकेला ही रेखा के पास चला गया था। तभी उसने इस रेखा नारी के निश्छल प्रेम और आत्मीयता को बहुत निकट से समझा और पढ़ा था। उस भेट मे रेखा के सम्बन्ध मे सभी-कुछ लीलाधर जान चुका है। शायद ऐसी कोई बात शेष नहीं रही, जिसे जानने की अब जरूरत रह गई हो।

शरच्चन्द्र के उपन्यास के सिलसिले मे रेखा अपने चरित्र के सम्बन्ध मे कह चुकी है—'मैं उनकी जाति की नहीं, जो पुरुष के भोग की वस्तु है।' कितनी दृढता है उसके इस कथन मे! उस कठोर शिला की तरह ही उसका चरित्र है जो गर्मी, वर्षा और शीत के थपेडे सहकर भी कभी पिघल नहीं सकती, गीली नहीं हो सकती और काँप नहीं सकती। सभी प्रहारो को अडिग शान्ति और गम्भीरता के साथ सह लेने की क्षमता जिसमे आ चुकी है।

रेखा के इस उत्तर से उस वक्त लीलाधर आश्चर्यचकित रह गया था। इसीलिए उसने पूछा था—'तो तुमने भी शरच्चन्द्र का वह उपन्यास पढ़ा है, रेखा?' और, रेखा ने जो उत्तर दिया था, उसका रहस्य अब लीलाधर बखूबी समझ सका है! रेखा जब स्वयम् उपन्यास लेखिका है, तब शरच्चन्द्र के उपन्यासों को उसने न केवल पढ़ा होगा; बल्कि एक आलोचक की गहरी दृष्टि से उनका अध्ययन भी किया होगा।

कदाचित् यही कारण है कि रेखा स्वय 'कच्चा धागा' नामक अपना

पहला उपन्यास ही इतनी सफलता के साथ लिख सकी है। लेकिन सफल उपन्यास लिखने के लिए यही काफी नही कि किसी महान् उपन्यास लेखक के उपन्यासों का गहरा अध्ययन कर लिया जाए! यह तो तभी सम्भव है, जब लेखक स्वयं ऐसी परिस्थितियों का सामना कर चुका हो, जिनके थपेडों से उसका अन्तर्मन तिलमिला उठा हो और उसकी अपनी अनुभूति इतनी तीखी हो चुकी हो कि अन्तस्तल से उफ़ान की तरह बाहर फूट निकलने का प्रबल वेग समेट चुकी हो। और, रेखा का अपना जीवन ऐसा ही है! वह ऐसी ही परिस्थितियों से गुजर चुकी है, जिनसे उसका अन्तर्मन तिलमिला उठा है। यदि यह बात न होगी, तो रेखा अपने विवाह के सम्बन्ध मे इतनी उदासीनता कभी प्रकट न करती—'कभी नहीं और किसी से नहीं। साथी तो विवाह न करने पर भी बहुत मिल सकते है। . मैं अविवाहित ही रहूँगी—आजीवन कुमारी।'

रेखा के इस क्रान्तिकारी निश्चय के लिए—आजीवन अविवाहित रहने के लिए—लीलाधर परोक्ष रूप से स्वय को ही उत्तरदायी समझता है—शायद दोषी भी। लीलाधर की माँ से, जब रेखा की माँ ने उसके विवाह का प्रस्ताव रक्खा और एक तीखी फटकार के साथ वह प्रस्ताव ठुकरा दिया गया, तो रेखा पर उसका प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था। वह लेखिका है न! कलाकार स्वभावतः अत्यधिक भावुक होता है। नारी यों ही भावुक होती है। फिर, जिस नारी ने—रेखा ने—एक कलाकार का हृदय पाया है, उसकी भावुकता का क्या कहना!

यद्यपि लीलाधर इस मामले मे दोषी नहीं है। उसे तो इस सब का पता तब चला, जब अलका के साथ उसका जीवन-सूत्र सदा के लिए सम्बद्ध हो चुका था। रेखा को वह समझा चुका है यह सब। लेकिन यह सब समझाने के पहले ही रेखा के दिल पर चोट लग

चुकी थी। उस चोट की तिलमिलाहट का उस पर प्रभाव भी पड चुका था। भावुकता की उसी लहर मे शायद रेखा अपने कुछ निश्चय भी कर चुकी है—असाधारण निश्चय।

आजीवन अविवाहित रहकर जीवन बिता देना असाधारण निश्चय नही तो और क्या है? लीलाधर को लगा, इस रेखा पर शरच्चन्द्र के उपन्यासों का ही नहीं, बल्कि उनके व्यक्तिगत जीवन का भी शायद पूरा-पूरा प्रभाव पड़ चुका है। शरच्चन्द्र ने दो-दो विवाह किए, फिर भी सन्यासी की तरह जीवन बिताया। परन्तु यह रेखा तो आजीवन कुमारी रहना चाहती है! पुरुष और नारी के जीवन मे समता कैसी? पुरुष तो अविवाहित रहकर भी अपने तन की भूख कहीं भी मिटा सकता है। परन्तु नारी? उसके लिए यह सम्भव नहीं। फिर, एक कलाकार का हृदय जिस नारी ने पाया है, उसके लिए तो यह और भी असम्भव है। कलाकार की कल्पनाएँ तो भौतिक जीवन की रगीनियों का स्पर्श कदाचित् उन्मुक्त होकर करना चाहती है। न करने पर इन रगीनियों की उसे अनुभूति ही क्या होगी? और अनुभूति के अभाव में वह अपनी कला-कृतियों मे वास्तविकता का पुट कैसे दे सकेगा? तो क्या इस रेखा की कलाकृतियाँ जीवन की रगीनियों की वास्तविकता से दूर ही रहेगी? और यदि ऐसा हुआ, तो क्या इसके लिए लीलाधर स्वयम् दोषी न रहेगा?

लीलाधर ने निश्चय किया कि वह रेखा से फिर एक बार भेंट करेगा। उसे समझाएगा कि वह अपने लिए नहीं, तो अपने कलाकार की पूर्णता के लिए विवाह अवश्य कर ले। लेकिन यह सब समझाने के लिए वह अपनी पत्नी और बहिन के साथ रेखा के पास नहीं जा सकता। इस सबके लिए रेखा से पुनः एकान्त में मिलना होगा। उसने तय किया कि कल दोपहर की गाड़ी से वह प्रयाग जाएगा।

रात-भर वहाँ रहकर, परसों गोरखपुर चला जाएगा। ऐसा करने से एक लाभ और होगा। रेखा को वह समझा देगा कि उसके प्रयाग आने की बात कभी प्रसगवशात् वह लता अथवा अलका से न कर बैठे। अलका उसकी पत्नी है न! शायद उसे रेखा से इस प्रकार लीलाधर के मिलने की बात उचित प्रतीत न हो।

बाहर बरामदे मे बैठे हुए चपरासी को लीलाधर ने बुलाया। रेखा और लता के नाम लिखकर रक्खे हुए पत्र उसे देते हुए कहा—'ये पत्र लैटर-बक्स मे छोड़ आओ। लौटते समय डाक भी लेते आना।'

दोनो पत्र लेकर चपरासी जब बैठकखाने से बाहर चला गया, तब लीलाधर को जैसे किसी भूली-सी बात की याद आ गई। उसे फिर पुकारा।

दोनों पत्र चपरासी से लेकर लीलाधर ने रेखा के नाम लिखे हुए पत्र का लिफ़ाफ़ा सावधानी से खोला। उसमे रक्खे हुए पत्र मे उसने इतना और लिख दिया—'कल दोपहर की गाड़ी से रवाना होकर, शाम को तुम्हारे पास पहुँच रहा हूँ। परसों सुबह प्रयाग से गोरखपुर चला जाऊँगा।' इसके बाद फिर उस पत्र को लिफाफे मे बन्द कर दिया और चपरासी को दोनों पत्र देते हुए कहा—'अब ले जाओ।'

चपरासी यह देख, मन-ही-मन अपने साहब पर हँस पड़ा। उसने जाना कि वह स्वयं जिस तरह कभी-कभी कोई बात भूल जाता है, उसके साहब—लीलाधर—भी उसी तरह भूल जाते है। दोनों पत्र लेकर वह चला गया।

दो-तीन आवश्यक फाइलों को देख, लीलाधर ने अपने इजलास का काम पूरा किया और बाहर बरामदे मे बैठे हुए मुंशी को बुलाकर वे फाइले उसे सौप दीं। इसके बाद नहाने-धोने और खाने-पीने की तैयारी मे जुट गया।

११

पाँच दिन की छुट्टी लेकर लीलाधर आज दोपहर की गाड़ी से, लखनऊ से प्रयाग के लिए रवाना हो गया। इन पाँच दिनों मे से एक दिन उसे प्रयाग मे रेखा के पास और बाकी चार दिन गोरखपुर मे बिताने होंगे।

ट्रेन के दूसरे दर्जे के डिब्बे मे एक बर्थ पर लेटा हुआ लीलाधर सोच रहा है रेखा की बात—उसी रेखा की बात, जिसके पास वह जा रहा है। कल उसने रेखा के नाम एक पत्र भेज दिया है। अपने पहुँचने की सूचना उसे लिख भेजी है। लेकिन इस प्रकार अचानक पहुँचने का कारण कुछ नहीं लिखा। लिखने की जरूरत नहीं समझी उसने। फिर, इतना तो उसने लिख ही दिया है कि प्रयाग मे वह सिर्फ़ रात-भर ठहरेगा। दूसरे दिन गोरखपुर के लिए रवाना हो जाएगा। यह संकेत पर्याप्त है। रेखा समझ ही लेगी कि गोरखपुर जाने के सिलसिले मे ही लीलाधर उसके पास जा रहा है। यद्यपि वास्तविक कारण कुछ और ही है। लेकिन रेखा उसे

समझ नहीं सकती। और, लीलाधर अपने पहुँचने का रहस्य उसे बतलाना नहीं चाहता।

रेखा बहुत ही रहस्यमयी है न! लीलाधर भी इस रहस्यमयी के सामने इस बार कुछ रहस्यपूर्ण होकर पहुँचना चाहता है, यद्यपि रेखा के सामने पहुँचकर वह रहस्यपूर्ण रह नहीं पाता। रेखा का नपातुला-सा वाक्चातुर्य्य उसे पराभूत कर देता है। रेखा ने एक कलाकार का हृदय जो पाया है! इस कलाकर्त्री से पराभूत होने मे लीलाधर का अन्तर्मन आनन्द-विभोर हो उठता है। रेखा का निश्छल स्नेह पाया है लीलाधर ने। इस स्नेह की छाया मे, रेखा का प्रत्येक शब्द उसे सुधा-वर्षण-सा प्रतीत होता है।

लीलाधर जानता है कि इस रेखा के स्थान पर यदि कोई दूसरी नारी होती, तो उसे तिरस्कार और उपालम्भ के अतिरिक्त और कुछ भी न मिलता उससे। लेकिन रेखा से उसने आज तक कभी कोई तिरस्कार अथवा उपालम्भ नहीं पाया।

बीती बातों को रेखा यद्यपि भूल नहीं सकी है; लेकिन उन बातो से उसे लीलाधर पर खीझ नहीं होती। होती भी हो, तो कभी उसने प्रकट नहीं किया। वह तो सामाजिक विधान को ही दोषी समझती है इस मामले मे। सामाजिक विषमता यदि हमारे यहाँ न होती, तो आज वह अपने आपको लीलाधर की छाया मे ही पाती—उसका जीवन-सूत्र लीलाधर के साथ ही सम्बद्ध होता। लेकिन सामाजिक विषमता के कारण, वह इस सबसे वचित रह गई। फिर भी, इस सबको वह तूल नहीं देना चाहती। इस सबके लिए लीलाधर को वह अपने निश्छल स्नेह से वचित नहीं रखना चाहती। कितनी महान् है यह रेखा—कितनी उदार!

इलाहाबाद स्टेशन पर जब गाड़ी पहुँची, तब लीलाधर ने गाड़ी रुकने के पहले ही प्लेटफार्म पर अपनी दृष्टि फेककर देखना चाहा कि

खा कहीं दीखती है या नहीं। मुसाफिरों की भीड के बीच उसने
खा कि रेखा की आँखे ट्रेन के डिब्बों पर स्थित हैं और लीलाधर
ो देख लेने के लिए उत्सुक हैं।

लीलाधर का कम्पार्टमेण्ट जब रेखा के सामने से गुजरा, तो दोनों
े एक-दूसरे को बखूबी देख लिया। एक मन्द स्मित से दोनों ने ही
ाायद पारस्परिक अभिवादन भी किया।

ट्रेन खड़ी हो गई। लीलाधर का सामान जब एक कुली ने
उतारकर प्लेटफार्म पर रक्खा, तब तक रेखा भी वहाँ आ पहुँची।
ीलाधर के आगमन से रेखा को जो प्रसन्नता हो रही थी, वह उसके
ओठों पर एक स्पष्ट मुस्कराहट के रूप मे दर्शनीय थी। यह देख,
ीलाधर को आत्मीय सुख हुआ। कहा उसने—'रात मे स्टेशन तक
आने की व्यर्थ तकलीफ़ की, रेखा!'

'लखनऊ से प्रयाग तक आने की तकलीफ़ से तो यह नगण्य ही
है।' रेखा ने कहा।

लीलाधर निरुत्तर रह गया। उसने तो शिष्टाचार-वश ही यह
कहा था। और, रेखा ने जो उत्तर दिया है, वह भी शिष्टाचार से ही
भरा हुआ है, लेकिन लीलाधर को निरुत्तर कर देनेवाला।

लीलाधर का सामान अब तक कुली अपने सिर पर रख चुका
था। कुली के साथ लीलाधर और रेखा—दोनों ही—गेट की तरफ़
चल पडे।

लीलाधर शायद यह सोच रहा था कि बातचीत का सिलसिला
अब किस तरह जोड़ा जाए। और, रेखा शायद यह सोच रही थी कि
प्लेटफार्म की चहल-पहल के बीच अधिक बातचीत करना ठीक नहीं।
इसी मनोदशा को लेकर दोनो चुप थे।

गेट के बाहर पहुँच, एक ताँगे पर बैठ, शहर की तरफ़ बढ चले

ये दोनों। रेखा ने पूछा—'गोरखपुर जाने की क्या ज़रूरत आ पड़ी ? सब कुशल-मंगल तो है ?'

'सब मजे मे हैं।' लीलाधर ने कहा—'लेकिन मैं मजे मे नहीं हूँ, रेखा !'

'क्या हुआ आपको ?'

'कोई खास मर्ज नहीं, सिर्फ मानसिक पीड़ा।'

'समझी ! शायद अलका बहिन आपके पास नहीं है आजकल !' रेखा ने कहा।

रेखा के नारी-हृदय की इस वास्तविक अनुभूति पर लीलाधर स्तब्ध रह गया। अविवाहित रहते हुए भी यह नारी, विवाहित व्यक्तियों की मनोदशा का इतना दुरुस्त अनुमान कर सकने की क्षमता रखती है ! क्यों न हो, आखिर एक कलाकार का हृदय इसने पाया है न ! उपन्यास-लेखिका होकर मानव की मनोदशा का इतना अनुमान भी यदि यह न कर सके, तो उपन्यास कैसे लिख सके ?

लीलाधर को चुप देख, रेखा ने फिर कहा—'और, इसी रोग का इलाज कराने शायद आप गोरखपुर जा रहे है ?'

'तुम्हारा अनुमान बहुत-कुछ ठीक है, रेखा !' लीलाधर ने कहा—'लेकिन बिलकुल दुरुस्त नहीं।'

'तब आप ही बतलाइए न, क्यों इस रोग के शिकार हो रहे हैं ?'

'बतलाऊँगा रेखा ! लेकिन घर पहुँचकर।'

रेखा ने कदाचित् अपनी ग़लती स्वीकार करते हुए कहा—'सच-मुच ऐसा प्रश्न मुझे रास्ते में नहीं करना था। लेकिन अब तो ग़लती हो ही चुकी है।'

'गलती तुम्हारी नहीं है।'

'तो किसकी है ?'

'मेरी !'

'सो कैसे ?'

'मै अपनी मानसिक पीडा की बात यदि न कहता, तो तुम्हे यह प्रश्न करने का मौक़ा ही कैसे मिलता ?'

'यदि ऐसा मौका न देने का आपका इरादा हो, तो मै अपने शब्दो को वापस ले सकती हूँ ।'

'नहीं, रेखा !' लीलाधर ने कहा—'मेरी बात को तुम अन्यथा समझने की चेष्टा न करो। यदि ऐसा होता, तो मैं अपने अन्तर्मन की अकुलाहट व्यक्त ही क्यो करता ?'

'लेकिन अभी-अभी आपने स्वय कहा है कि यह अभिव्यक्ति ग़लती से ही हो गई है ।'

'ग़लती का मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि यहाँ—रास्ते मे—मुझे यह प्रसंग नहीं छेड़ना था। घर पहुँचकर इतमीनान के साथ ही व्यक्तिगत बाते करना ठीक होता। इस बात को तुम चाहे जिस रूप मे समझ सकती हो ।'

'ऐसी धृष्टता कर मैं आपके साथ अन्याय नहीं करना चाहती ।'

'तुम उपन्यास-लेखिका हो न, इसीलिए तुम्हारे मन मे दूसरो के प्रति न्याय-अन्याय की भावना का स्फुरण होना स्वाभाविक है। इसीलिए तुम महान् हो ।'

'इतनी प्रशंसा करके आप मुझे कहीं का न रहने देगे ।' रेखा ने कहा—'मैं तो किसी योग्य नहीं। एक अकिंचन नारी हूँ—कुमारी। और, न्याय-अन्याय की जिस बात को लेकर आप मुझे 'महान्' कह रहे है, वह तो आपके लिए भी लागू होती है ।'

'यह निराधार बात है। मुझमे यह गुण है ही नहीं, रेखा !'

'रेखा कभी कोई निराधार बात नही कहती ।' रेखा ने कहा—'आप डिपुटी कलेक्टर है। कितने ही मुकदमो का फैसला करते समय, क्या न्याय-अन्याय की भावना का उदय आपमे न होता होगा ?'

'ओह ! अब समझा तुम्हारी बात को, रेखा !' लीलाधर ने कहा—'लेकिन मेरी और तुम्हारी भावना मे आकाश-पाताल का अन्तर है। मैं किसी मुकदमे के फैसले के सिलसिले मे जिस न्याय-अन्याय की भावना से प्रेरित होता हूँ, वह तो कानून के सीमित से दायरे की चीज़ होती है। लेकिन तुम्हारी भावना अपने हृदय की असीम परिधि के उन्मुक्त वातावरण की वस्तु होती है। तुम किसी को भी अपने हृदय की समस्त सहानुभूति दे सकती हो—मानवता के नाते उस पर सुधावर्षण कर सकती हो। लेकिन मैं ? मैं तो क़ानून के इंगित पर ही कुछ कर सकता हूँ। मेरा हृदय किसी अभियुक्त पर द्रवित हो भी जाए, किसी को अपनी सहानुभूति भी देना चाहे, लेकिन क़ानून यदि ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता, तो मैं यह भी नहीं कर सकता।'

'यह तो परिस्थितियों का दोष हुआ, आपका नहीं।' रेखा ने कहा—'जहाँ आपके मन में किसी के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई नहीं कि आप भी मानवता के नाते महान् और कृपालु कहे जा सकते हैं। यह बात दूसरी है कि आपकी परिस्थितियाँ आपको ऐसा करने नहीं देतीं।'

'इसीलिए तो मैं तुम्हें महान् कह रहा था, रेखा ! परिस्थितियों का निर्माण करना भी तो हमारे ही हाथ की बात है न ! हम क्यों ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करें, जिनमे रहकर हम दुनिया का कोई भी हित-साधन न कर सकें, और स्वयम् को भी किसी बन्धन में ही जकड़ा हुआ महसूस करते रहें ?'

'इसके लिए हम पूर्णतः उत्तरदायी नहीं कहे जा सकते।' रेखा ने प्रबल तर्क किया—'इन परिस्थितियों में जब हम धकेल दिए जाते हैं, तब हममें निर्णायक बुद्धि रहती ही नहीं। यह बुद्धि तो तब आती है, जब हम इन परिस्थितियों की विषमता से ऊबने और छटपटाने

लगते हैं। और, इन परिस्थितियों मे हमको धकेलनेवाले होते हैं हमारे अभिभावक।'

रेखा की बात सर्वथा सच थी। लीलाधर ने स्वीकार किया कि बहस-मुबाहसे मे इस रेखा नारी को परास्त करना आसान नहीं। कहा उसने—'तुम्हारी बात बिलकुल दुरुस्त है, रेखा ! मुझे तो प्रसन्नता है कि तुम किसी भी बहस मे मुझे सफलतापूर्वक पराभूत कर देती हो।'

'तब मैं अवश्य महान् हूँ।' रेखा ने मुसकराते हुए कहा—'कम-से-कम इस अर्थ मे कि बडे-बड़े वकील जिसके सामने बहस मे पराभूत होते होगे, वही मेरे सामने पराभूत हो जाता है।'

'हाँ रेखा, यही बात है।' लीलाधर ने कहा—'किसी भी अर्थ मे सही, पर तुम हो महान्।'

यह बातचीत शायद आगे भी अपनी रफ्तार से बढती जाती, लेकिन इसी बीच ताँगा अचानक खड़ा हो गया। रेखा ने देखा कि गौ-घाट पर ठीक उसके मकान के सामने पहुँचकर ताँगा खड़ा हुआ है। रेखा को तनिक विस्मय हुआ। क्या यह ताँगेवाला उसे जानता है ? फिर भी उसने पूछा—'तुम मेरा मकान जानते थे, ताँगेवाले ?'

'हाँ, हुजूर ! कई बार आपको यहाँ पहुँचा गया हूँ।'

'तभी तुम ठीक मेरे मकान के सामने आकर रुक गए। अच्छा, यह सामान रख दो बरामदे मे।' और तब लीलाधर का एक हाथ अपने हाथ मे लेकर रेखा ने कहा—'आइए।'

ताँगेवाले ने रेखा का सकेत पाकर लीलाधर का सामान बरामदे मे रख दिया। रेखा ने उसे एक रुपया दिया और वह चला गया।

१२

बिना किसी सूचना के पिछली बार लीलाधर आ पहुँचा था। लेकिन रेखा के आतिथ्य-सत्कार मे कहीं-कोई त्रुटि नहीं थी। फिर भी एक बात उस समय उसने महसूस की थी : यदि सूचना देकर आया होता, तो रेखा को हार्दिक प्रसन्नता हुई होती। जो-कुछ भी स्वागत-सत्कार वह कर सकी थी, वह रेखा की समझ मे कदाचित् पर्याप्त नहीं था।

सूचना पाकर ही रेखा आज स्टेशन पर जा पहुँची थी—उसका स्वागत करने। और, स्टेशन से घर आने पर इस बार रेखा ने लीलाधर का जो-कुछ भी स्वागत-सत्कार किया, वह सचमुच अभूतपूर्व रहा। आते ही चाय के साथ बढ़िया बगाली मिठाइयाँ और नमकीन। भोजनों के बाद फलों का प्रबन्ध। पान और सिगरेट भी। यह सब रेखा के हृदयोल्लास को व्यक्त कर रहे थे। जो कहीं लीलाधर ने अपने आने की सूचना पहले से न भेज दी होती, तो रेखा के इस उल्लास में एक कमी न रह जाती!

भोजनों के बाद पान के दो बीडे चबाकर जब लीलाधर सिगरेट का धुआँ उड़ा रहा था, तभी रेखा ने कहा—'रास्ते मे ताँगे पर जो बातचीत हो रही थी, उसे मैं समझती हूँ, अब आगे बढाना अनुचित न होगा ?'

मुसकराहट दौड गई लीलाधर के ओठो पर। कहा उसने—'हाँ, अब इतमीनान से हम अपनी व्यक्तिगत बातें कर सकते है, रेखा ! तुम्हारा मतलब है, मेरी मानसिक पीड़ा से और उसका कारण समझ लेने से न ?'

रेखा ने लीलाधर की ओर दृष्टिनिक्षेप करते हुए केवल सिर हिला दिया—मानो कह रही हो, हाँ यही बात है।

'मेरा खयाल है, रेखा !' लीलाधर ने अपनी बात प्रारम्भ करनी चाही—'कि रोग का कारण किसी डॉक्टर को ही बतलाना चाहिए—हर किसी को नहीं।'

'मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि यदि आप किसी कारण यह बात मुझे न बतलाना चाहते हों, तो मैं अपने शब्दों को—अपने अनुरोध को—वापस ले सकती हूँ।'

'पूरी बात सुने बिना ही, तुम कैसे कह सकती हो कि मैं यह बात तुम्हें बतलाना नहीं चाहता ?'

'यदि अब तक आपकी बात भूमिका के ही रूप में चल रही हो, तो मैं अपनी गलती स्वीकार करती हूँ। कहिए, आप अपनी बात।'

'मैं कहना चाहता था कि मेरे रोग का इलाज सिर्फ़ तुम कर सकती हो, रेखा।'

'क्या मतलब ?' रेखा ने आँखे फैलाकर लीलाधर की तरफ़ देखा।

'इतना तुम विश्वास रक्खो, रेखा !' लीलाधर ने रेखा की दृष्टि का रहस्य समझते हुए कहा—'मैं ऐसी कोई बात नहीं कहूँगा, जिससे तुम मुझे नफ़रत की नज़रों से देखने का इरादा कर सको।'

रेखा को मन ही मन लज्जा का अनुभव हुआ। क्यो उसने आँखे तरेरकर देखा इस मेधावी और सरल लीलाधर की तरफ़? जिसे देवता की तरह वह मन-ही-मन अपनी श्रद्धा देती है, उसके एक प्रश्न पर इतना भाव परिवर्तित करने की आवश्यकता ही क्या थी? किसी तरह अपनी मनोदशा को छिपा लेने का प्रयत्न करते हुए कहा रेखा ने—'आज जाने क्यों, मैं बारबार ग़लती किए जाती हूँ। शायद आपकी बात पूरी सुने बिना ही, बीच मे बोल उठने की जो धृष्टता मैं अभी-अभी कर चुकी हूँ, उसी की पुनरावृत्ति है यह। और, विश्वास करने की जो बात आप कह रहे हैं, वह तो आपकी शालीनता है। इसे कहने की जरूरत नहीं। विश्वास-अविश्वास की परीक्षा प्रारम्भ में ही की जाती है। वह मैं कर चुकी हूँ। गलतफ़हमी के लिए क्षमा न करेंगे क्या?'

लीलाधर को आन्तरिक प्रसन्नता हुई। यह पहला मौका है, जब चन्द मिनटों के भीतर ही, लीलाधर दो बार इस रेखा को अपनी बातचीत के सिलसिले मे पराभूत कर सका है। इस बार वह बहुत ही सतर्क होकर आया है न! क्षण भर मौन रहने के बाद कहा उसने—'कोई बात नहीं, रेखा! कभी-कभी गलतफहमी हो ही जाती है।'

'तो कहिए न अपनी बात?' रेखा ने अनुरोध किया—'किस तरह मैं आपका इलाज कर सकती हूँ?'

'रोग का कारण तो पूछा ही नहीं रेखा, और इलाज करने की बात पूछने लगीं तुम!'

'मैंने कहा न, आज कुछ विचित्र मनोदशा हो रही है मेरी। बातचीत का सिलसिला ही शायद आज ठीक नहीं बँध रहा है।'

'यह रोग ही अजीबोगरीब है, रेखा! इसीलिए ऐसा हो रहा है। इसमे तुम्हारा कोई दोष नहीं। मेरी मानसिक पीड़ा का कारण तुम्हारी

ही कुछ बाते हैं। पिछली बार भेंट होने पर तुमने जो बातें मुझसे की थीं, उनमे से एक बात मुझे अब तक पीड़ा पहुँचा रही है।'

'जान सकती हूँ, वह बात ?'

'क्यों नहीं ! बिना बतलाए उसका इलाज कैसे होगा ? तुम्हे शायद स्मरण होगा रेखा, तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध मे जब मैंने तुमसे पूछा था, तब तुमने कहा था—"कभी नहीं, किसी से नहीं । .साथी तो विवाह न करने पर भी बहुत-से मिल सकते हैं।....मैं अविवाहित ही रहूँगी—आजीवन कुमारी।" तुम्हारी इसी बात को लेकर मैं मानसिक पीड़ा का बराबर शिकार रहने लगा हूँ।'

'सो क्यों ?' रेखा ने कहा—'आपका विवाह तो हो ही चुका है। मेरे विवाह के प्रश्न को लेकर आप क्यों परेशान हो रहे हैं ?'

'इसलिए कि इस मामले मे परोक्ष रूप से मैं अपने-आपको दोषी समझता हूँ।'

'यह आपका भ्रम है। इसके लिए आप नहीं, बल्कि हमारा हिन्दू समाज और उसके नियम दोषी है।'

'लेकिन तुम्हारे अविवाहित रहने से हिन्दू समाज के नियम तो नहीं बदल जाएँगे। फिर इससे लाभ ?'

'कोई नुकसान भी तो नहीं।' रेखा ने कह दिया।

'नुक़सान तो है।'

'वह क्या ?'

'तुम्हारे जीवन की अपूर्णता का अर्थ है तुम्हारी कलाकर्त्री की अपूर्णता।' लीलाधर ने कहा—'जीवन की रंगीनियों का जब तक तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव न होगा, तुम्हारी कला-कृतियाँ जीवन की वास्तविकता से वंचित रह जाएँगी।'

'इसे मैं नहीं मानती !' रेखा ने गम्भीरता के आवरण मे कहा—'शरत्चन्द्र आजीवन अविवाहित रहे। लेकिन उनके उपन्यासों में कहीं

कोई ऐसा स्थल खोजने पर भी न मिलेगा, जिसे जीवन की वास्तविक अनुभूतियों से अछूता कहा जा सके। आप शायद भूल जाते है कि जीवन की अनेक ऐसी बातें होती हैं, जिनका स्वयम् अनुभव करने की आवश्यकता नहीं। और, ऐसा किए बिना ही लेखक उन बातों का जो चित्रण करते हैं, वह वास्तविकता से एकदम ओतप्रोत रहता है। इसके लिए सिर्फ़ अध्ययन की आवश्यकता पडती है—प्रत्यक्ष अनुभव करने की नहीं।'

'तुम्हारा उपन्यास पढ़कर और तुम्हारी पिछली बातें सुनकर ही मैं यह अनुमान करने लगा था कि तुम न केवल शरत्चन्द्र की कलाकृतियों से प्रभावित हो, प्रत्युत उनके व्यक्तिगत जीवन का भी तुम पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ रहा है। और, मेरे इस अनुमान की पुष्टि, तुम्हारी आज की बातें कर रही हैं। लेकिन शरत्चन्द्र के सम्बन्ध में तुम्हारी धारणा गलत है, रेखा! उन्होंने दो-दो विवाह किए थे। यह बात दूसरी है कि विवाहित होकर भी वे सन्यासी-जैसा जीवन बिताते थे।'

'यह तो सयोग की बात है,' रेखा ने कहा—'कि मुझे आजीवन अविवाहित रहने का निश्चय करना पड़ा और आपको आज यह कहने का अवसर मिल गया। मेरी धारणा ग़लत हो सकती है; लेकिन मेरा निश्चय नहीं बदल सकता।'

'तब मेरे रोग का इलाज तुम न कर सकोगी, रेखा!' लीलाधर ने निराशा के स्वर मे कहा।

'आप स्वय इसका इलाज कर सकते हैं।'

'सो कैसे?'

'मानसिक पीड़ा होती है मन की कमज़ोरी से। और, मन की कमज़ोरी दूर करना दूसरों के नहीं, अपने ही वश की बात है।'

'इतना तो मैं समझता हूँ, रेखा! लेकिन तुम्हारे जीवन की अपूर्णता को देखते हुए मुझे कभी आन्तरिक सन्तोष न होगा।'

'यही तो आपके मन की कमजोरी है न ! फिर, विवाह को ही क्यों आप जीवन की पूर्णता समझते है ? आपको सन्तोष होना चाहिए कि यह रेखा सदा कुमारी रहकर जितना काम कर सकेगी, उतना विवाहित होकर नहीं। दुनिया का माया-मोह मानव को कर्त्तव्यच्युत ही करता है। माया-ममता की भूलभुलैयाँ त्याग के पथ पर मानव को चलने नहीं देती। और, मैं इसी मार्ग पर कदम बढाना चाहती हूँ। मैंने कभी कहा भी था कि जीवन-निर्वाह के लिए अध्यापन-कार्य तो मुझे करना ही होगा, लेकिन देश-सेवा के मार्ग पर मैं बहुत जल्द अग्रसर होनेवाली हूँ।'

'लेकिन मुझे एक भय है। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी कलाकर्त्री का विकास, इस मार्ग पर कदम बढ़ाते ही, अवरुद्ध हो जाए।'

'आनेवाला समय ही इसका साक्षी होगा!' रेखा ने कहा—'राष्ट्रीय सेवाओं के साथ-साथ कितने ही नेता साहित्य-सृजन किए जा रहे है। इन नेताओ की तुलना मे अपने-आपको मै नगण्य समझती हूँ, फिर भी इनका अनुसरण तो कर ही सकती हूँ। इसीलिए मैं कहती हूँ कि आपको सन्तोष होना चाहिए कि यह रेखा विवाहित होकर अपना कार्यक्षेत्र किसी चहारदीवारी मे सीमित नही करना चाहती, बल्कि देश के विस्तृत प्राङ्गण को अपना कार्यक्षेत्र बनाना चाहती है। आपको अब अपनी मानसिक पीड़ा का तर्पण कर देना चाहिए और इस नवीन मार्ग पर रेखा को बढते देख अभिमान होना चाहिए।'

'यही होगा, रेखा!' लीलाधर ने कहा और एक जम्हाई लेकर कुरसी के पिछले भाग पर सिर टिकाकर अधलेटा-सा हो गया वह।

यह देख रेखा ने कहा—'अच्छा, अब आराम कीजिए।' और स्वतः एक पलङ्ग पर उसने लीलाधर का बिस्तर बिछा दिया।

'तो शहर काग्रेस कमेटी से भी तुम्हारा कोई सम्बन्ध है ?'

'यों ही नाम-मात्र का।' रेखा ने कहा था—'कभी-कभी प्रयाग के आस-पास के गाँवों मे चली जाती हूँ और........।' कहते-कहते रेखा चुप हो गई थी।

'तुम रुक क्यों गईं, रेखा ?' लीलाधर ने सिगरेट का धुआँ उगलते हुए कहा था—'क्या यह सोचकर कि मैं एक सरकारी अफ़सर हूँ और मुझे ये बाते नहीं बतलानी चाहिए ?'

'सरकार की दृष्टि मे आप सरकारी अफ़सर हैं। काग्रेस की दृष्टि में भी हो सकते है। लेकिन मेरी दृष्टि मे तो आप मेरे सखा ही हैं।' रेखा ने मुसकराते हुए कहा था—'अदालत मे आने पर, कठघरे मे घिरे रहने पर और कानून के शिकंजे मे कस जाने पर मेरे लिए भी आप सरकारी अफसर हो सकते हैं, लेकिन घर पर नहीं।'

'फिर तुमने अपनी बात मुझे बतलाई क्यों नहीं ?'

'मैं सोचने लगी थी कि दोपहर के बाद मुझे शहर काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष ने बुलाया है और उसी समय आपकी गाड़ी गोरखपुर के लिए रवाना होती है।'

'इसलिए तुम स्टेशन तक न चल सकोगी।' लीलाधर बीच मे ही बोल उठा—'इस असमंजस मे तुम पड़ गईं, रेखा ! लेकिन इसकी चिन्ता न करो। मैं अकेला चला जाऊँगा। तुम अपने आवश्यक काम मे बाधा न आने दो। लेकिन यह तो बतलाओ कि प्रयाग के आस-पास के गाँवों मे तुम करती क्या हो ?'

'गाँववालों के बच्चों को प्रति रविवार को थोड़ा-बहुत पढ़ा आती हूँ—अक्षर-ज्ञान करा आती हूँ। साथ ही प्रौढ़ व्यक्तियों को चर्खा चलाने और बच्चों को तकली चलाने का भी अभ्यास कराती हूँ।'

'तब यह कहो कि महात्मा गान्धी की रचनात्मक योजना को

क्रियात्मक रूप से सफल बनाने की दिशा मे तुम अपनी सेवाएँ देने लगी हो ?'

'आप तो जानते ही है कि इस दुनिया मे यह रेखा सर्वथा अकेली है। दिन-भर बालिकाओं को शिक्षा देने के बाद जो थोडा-बहुत समय रात मे मिलता है, उसे उपन्यास अथवा कहानी लिखने मे बिता देती हूँ। परन्तु रोज-रोज यह साहित्य-सृजन सम्भव नहीं। कभी-कभी मस्तिष्क को इतना थका अनुभव करती हूँ कि लिखने-लिखाने का काम इच्छा रहने पर भी नहीं कर पाती। ऐसे समय मे यह जरूरी हो जाता है कि कोई दूसरा काम किया जाए। और, इस दूसरे काम को मैंने देश-सेवा ही चुन रक्खा है।'

'किए जाओ रेखा!' लीलाधर ने कहा—'हमारे देश की प्रत्येक स्त्री मे—शिक्षित नारी मे—यदि यह भावना घर कर ले और इसे प्रयोगात्मक रूप दिया जाए, तो मैं समझता हूँ, महात्मा गान्धी के उद्देश्य बहुत जल्द सफलता का छोर छू सकते है। लेकिन एक बात जो मैं अनुभव कर सका हूँ, वह यह कि हमारे देश मे प्रदर्शन की भावना अधिक और काम करने की कम है।'

'नही, यह बात नहीं है।' रेखा ने बाहर टहलते-टहलते ही लीलाधर से कहा—'प्रदर्शन से, आप माने या न मानें, जन-साधारण में नवीन जागृति का सचार होता है। जनता यह समझने लगती है कि वह किसी अन्धकार मे पड़ी हुई है, और उस अन्धकार मे प्रकाश की किरणों का आवाहन करना आवश्यक है। प्रदर्शनों का मूल उद्देश्य यही है। जब यह बात जनता भली भाँति समझ लेगी, तब ये प्रदर्शन अपने-आप कम हो जाएँगे और ठोस कार्य ही चुपचाप किए जाने लगेंगे।'

लीलाधर चुपचाप सुनता रहा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। रेखा से वह बहस नहीं करना चाहता। यह विषय ही ऐसा है कि यदि

वह कोई तर्क करेगा, तो रेखा को गलतफहमी हो सकती है। वह सरकारी अफ़सर जो है!

लीलाधर को चुप देख, रेखा ने इस प्रसङ्ग को बदल देना ही ठीक समझा। उसने कहा—'कहीं घूमने-घामने नहीं चलिएगा?'

'नहीं रेखा!' लीलाधर ने कहा—'दो-तीन बजे तक का समय मैं तुम्हारे घर मे ही व्यतीत करना ठीक समझता हूँ। फिर, ऐसा कोई प्राकृतिक सौन्दर्य भी यहाँ दर्शनीय नहीं, जहाँ हम लोग चल सके। ले-देकर वही त्रिवेणी है। लेकिन त्रिवेणी-स्नान का अर्थ होता है कम-से-कम तीन घण्टे का समय खर्च करना।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'सिर्फ़ खद्दर-भण्डार तक जाना चाहता हूँ।'

रेखा को आश्चर्य हुआ। खद्दर-भण्डार मे जाकर लीलाधर क्या खरीदेगा? एक सरकारी अफसर—डिपुटी कलेक्टर—होकर इन्हे खद्दर से क्या प्रेम? पूछा उसने—'आप तो खादी पहनते नहीं। क्या खरीदेंगे वहाँ?'

'मैं नहीं पहनता, लेकिन तुम तो पहनती हो, रेखा?'

'तो मेरे लिए कोई चीज़ खरीदने की जरूरत क्या है?'

'तुम्हारी समझ मे न हो रेखा, लेकिन मेरी समझ मे है। मेरी भावनाओं को तर्क से दबा देने की चेष्टा क्यों करती हो?' एक क्षण रुककर फिर लीलाधर ने कहा—'यों तो मैं तुम्हारे लिए एक साड़ी ले आया हूँ; लेकिन वह खादी की नहीं है। पता नहीं, तुम उसे पहनोगी या नहीं। इसीलिए यह निश्चय करना पड़ा कि खादी-भण्डार से खादी की ही साड़ी खरीदकर तुम्हे भेंट करूँ।'

'जहाँ-तक बन पड़ता है, खादी ही पहनती हूँ।' रेखा ने कहा—'लेकिन मिल के बने कपड़ों को न पहनने की प्रतिज्ञा भी मैंने नहीं की है। इस दशा मे आप खादी-भण्डार न जावें। जो साड़ी आप लाए

हो, वही मुझे भेंट कर दें। आपकी भेंट मेरे लिए सदा बहुमूल्य रहेगी। हाँ, वह विदेशी नहीं होनी चाहिए।'

'सो तो मैं स्वयं विदेशी कपड़ा नहीं पहनता, रेखा!' लीलाधर ने कहा—'चलो, तुम्हे दिखलाऊँ वह साड़ी, जो मैं तुम्हारे लिए लाया हूँ।'

भीतर जाकर लीलाधर ने अपना सूटकेस खोला। कागज़ मे लिपटी हुई एक साड़ी निकाली और रेखा के हाथो पर धर दी। कागज़ को हटाकर रेखा ने देखा कि साड़ी एकदम सफ़ेद और बहुत ही पतली है। उसका किनारा जरी का है—बेलबूटों से बना एकदम आकर्षक। उसने कहा—'इतनी महँगी साड़ी नहीं खरीदनी थी।'

'रेखा!' लीलाधर ने कहा—'तुम्हारी जो आत्मीयता मैंने पाई है, उसके लिए मेरा रोम-रोम तुम्हारा ऋणी है। यह साड़ी तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं है। मैं तुम्हारे लिए कुछ भी तो नहीं कर सका। यदि मुझे तुम्हारी आत्मीयता का समय रहते तनिक भी आभास मिला होता, तो....।' लीलाधर चुप हो गया।

'बीती बातों की याद कर आप नाहक दुःखी होते हैं।' रेखा ने कहा—'किसी भी रूप मे आपकी निकटता पाकर मैं बहुत सुखी हूँ।'

इसी बीच लीलाधर ने कार्डबोर्ड का एक छोटा-सा लाल डिब्बा निकाला और उसे खोलकर रेखा के सामने रखते हुए कहा—'साड़ी के साथ यह भी एक तुच्छ भेंट तुम्हारे लिए लाया हूँ, रेखा!'

रेखा स्तब्ध रह गई यह देखकर कि कार्डबोर्ड के उस चमकीले डिब्बे मे सोने की चार चूड़ियाँ दमक रही है। कहा उसने—'आप यह क्या कर रहे है! दूसरों पर विजय पाने और दूसरों की आत्मीयता बटोरने के लिए ही ऐसे उपहारों की आवश्यकता पड़ती है।'

'तुम चिन्ता न करो, रेखा!' लीलाधर ने कहा—'मैं तुम पर किसी तरह की विजय पाने का आकांक्षी नहीं। तुम पहले ही मुझे पराभूत

कर चुकी हो। यह सब तो एक पराजित की भेंट है।' और रेखा की ओर मर्मभेदी दृष्टि फेरते हुए कहा—'लेकिन ये चूड़ियाँ मैं स्वय तुम्हे पहनाऊँगा, रेखा!'

'और यदि मैं यह स्वीकार न करूँ, तो?' रेखा ने मुसकराते हुए कहा।

'क्या रेखा?' लीलाधर ने पूछा—'चूड़ियाँ अथवा मेरा प्रस्ताव?'

'दोनो ही!'

'तब मैं समझूगा कि तुम्हारी आत्मीयता मे कहीं-न-कहीं कोई कृत्रिमता अवश्य है।'

'यह आप कभी स्वप्न मे भी न सोचे।' और रेखा ने अपनी कलाई लीलाधर की तरफ़ बढा दी। लीलाधर ने दो-दो चूड़ियाँ रेखा की एक-एक कलाई पर स्वय पहना दीं और मन-ही-मन एक अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव किया।

लीलाधर की यह भेंट पाकर रेखा गद्गद हो उठी। उसका हृदय भर आया। नारी हृदय की स्वभाव-जन्य कृतज्ञता उसकी आँखों मे झलक उठी। आज जब दुनिया मे उसका कहीं कोई अपना नहीं है, तब इस लीलाधर की आत्मीयता उसे अकूल सागर का एक किनारा प्रतीत हुई। देवता की भाँति जिसे वह मन-ही-मन अपनी श्रद्धा देती रही है, जिसके हृदय मे रेखा के प्रति गहरी आत्मीयता सुरक्षित है! रेखा को इससे बढ़कर और किसी सुख की चाह नहीं।

रेखा की गीली आँखों को देख, लीलाधर उसकी भावनाओं को भली भाँति समझ गया। उसने इस प्रसङ्ग को बदल देने की गरज से कहा—'रेखा, मैं तो तुम्हारे पास कई बार आ चुका। अब तुम्हे आना होगा लखनऊ।'

प्रकृतिस्थ होते हुए कहा रेखा ने—'मैं भी आऊँगी। लेकिन किसी

खास मौके पर ही मेरा आना ठीक होगा। लता बहिन के विवाह मे जरूर आऊँगी।'

'अभी तो लता के विवाह का कहीं निश्चय ही नहीं हुआ, रेखा!'

'तो ऐसी जल्दी क्या है। और, लता का विवाह तो आप लोगों को अब करना ही होगा।'

'पिताजी जब तक है, मैं इन पारिवारिक मामलों में नहीं पड़ना चाहता। अब गोरखपुर जा रहा हूँ। सम्भव है, इस मामले मे भी कोई बातचीत हो। लेकिन लता का विवाह यदि साल-दो साल न हुआ, तो क्या तुम इस बीच मे कभी लखनऊ न आओगी?'

'मेरा आना दुनिया की दृष्टि मे कहाँ तक उचित समझा जाएगा? बिना किसी कारण के शायद अलका बहिन भी मेरा वहाँ आना ठीक न समझे।'

लीलाधर को याद आया कि यहाँ अपने आने के सम्बन्ध मे, रेखा को कुछ समझा देने का निश्चय भी ता उसने कर रक्खा था। इस प्रसग मे उसने अपनी बात कह देनी ठीक समझी। उसे यह आशङ्का थी कि अलका को शायद यह नागवार गुजरे कि मैं इस प्रकार रेखा के घर आकर मिलता-जुलता हूँ। सो उसने कहा—'दुनिया की बात तुम ठीक ही कहती हो, रेखा! फिर, अलका मेरी पत्नी है न! मुझ पर वह अपना एकछत्र अधिकार समझती होगी। कदाचित् उसे यह आशंका हो कि तुम्हारे प्रति मेरा जो आकर्षण है, यह उसके एकछत्र अधिकार का हरण है।'

'अलका बहिन का ऐसा समझना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।' रेखा ने कहा—'एक हिन्दू पत्नी अपने पति को दूसरी किसी नारी के प्रति आसक्त नहीं देख सकती। भले ही दूसरी किसी नारी के प्रति उसके पति का स्नेह एकदम पवित्र क्यों न हो; लेकिन पत्नी उसे सहन नहीं कर सकती—शायद उसे पवित्रता की सज्ञा भी

नहीं देना चाहती। यही कारण है कि मैं बिना किसी कारण लखनऊ आना उचित नहीं समझती। मैं आपके दाम्पत्य जीवन को सुखी देखना चाहती हूँ। आपके सुख मे मेरे कारण किसी तरह का अन्तर पडे, यह मुझे स्वप्न मे भी स्वीकार नहीं।'

'एक बात है, रेखा!' लीलाधर ने कहा—'मैं यह नहीं समझता कि पत्नी के विचार इतने सकीर्ण क्यों होते हैं। यद्यपि अलका ने आज तक कभी तुम्हारे सम्बन्ध मे ऐसी कोई बात नहीं कही, जिससे उसकी सर्कीर्ण विचार-धारा का कही कोई आभास मिल सका हो। लेकिन आमतौर पर अनेक परिवारो मे इस सम्बन्ध मे देखी जानेवाली घटनाएँ यह स्पष्ट बतलाती है कि पत्नी अपने पति को किसी दूसरी नारी से स्नेहपूर्वक बात करते भी नहीं देखना चाहती। मैं यह प्रश्न तुमसे इसलिए पूछ रहा हूँ कि तुम नारी हो।'

'लेकिन मैं कुमारी हूँ।' रेखा ने मुसकराते हुए कहा—'आप यह भूल जाते हैं कि किसी कुमारी को यह सब अनुभव नहीं हो सकता। जब वह किसी पुरुष-विशेष पर अपना अधिकार ही नहीं रखती, तब उसे इसका अनुभव कैसे होगा?'

लीलाधर लज्जित हो गया अपने प्रश्न पर। उसने स्वीकार किया कि उसे ऐसा प्रश्न रेखा से नहीं करना था। उसने कहा—'ग़लती हो गई, रेखा! खैर, जाने भी दो इन बातों को। हाँ, एक बात का ख़याल तुम ज़रूर रखना। कभी अलका से अथवा लता से यह न कहना कि मैं तुम्हारे पास प्रयाग आया था।'

'देखिए, डर गए न आप!' रेखा ने मुसकराते हुए कहा।

'डरने की तो कोई बात नहीं है, रेखा!' लीलाधर ने कहा—'लेकिन पारिवारिक शान्ति मे अकारण अशान्ति का आवाहन करना मैं ठीक नहीं समझता।'

'अच्छी बात है।' रेखा ने कहा—'मैं ख़याल रखूँगी।' और रेखा नहाने-धोने की तैयारी करने लगी।

लीलाधर चुपचाप एक आराम-कुरसी पर बैठकर आज के समाचार-पत्रों को उलटने-पलटने लगा।

रेखा स्नान कर भोजन तैयार करने लगी। जब भोजन क़रीब-क़रीब तैयार हो गया, तो उसने लीलाधर को नहा लेने का संकेत किया। लीलाधर ने स्नान कर, रेखा के हाथ का बना हुआ भोजन किया। इसके बाद लीलाधर ने अपना सूटकेस बन्द किया और 'होल्डआल' बाँध डाला।

यह देख रेखा ने कहा—'अभी से तैयारी करने लगे! अभी तो सिर्फ़ एक बजा है। शायद अलका बहिन से मिलने की उत्सुकता बाँध तोड़ रही होगी।'

लीलाधर ने देखा कि रेखा के ओठों पर एक मुसकराहट खेल रही है। वह समझ गया रेखा का परिहास। कहा—'अलका से पहली बार मिलने नहीं जा रहा हूँ, रेखा!'

'तो यह कहिए कि प्रथम मिलन के लिए ही उत्सुकता रहती है, फिर नहीं?' रेखा ने परिहास की धारा में बहकर कहा।

'मेरा मतलब यह था रेखा कि प्रथम मिलन के लिए जो उत्सुकता रहती है, वह कुछ अद्भुत होती है। और, उस उद्भुत अनुभूति को ही उत्सुकता कहना उचित है। इसके बाद जो उत्सुकता रहती है, उसे इच्छा मात्र कहना अधिक ठीक होगा।'

'हाँ, तर्क के लिए कुछ भी कहा जा सकता है।' रेखा ने कहा—'लेकिन किसी भी अधीरता को उत्सुकता की संज्ञा दी जा सकती है। और, अपनों से मिलने की अधीरता तो सदा उत्सुकता ही कही जाएगी।'

'तर्क का जहाँ तक सम्बन्ध है,' लीलाधर ने कहा—'मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ कि तुमसे मैं जीत नहीं सकता।'

एक स्वस्थ मुसकराहट दोनों के ओठों पर दौड़ गई। इसके बाद इधर-उधर की गपशप होती रही। ढाई बजे दोनों ही एक ताँगे मे बैठ, स्टेशन की तरफ़ चल पडे।

रास्ते मे एक चौराहे पर रेखा उतर पड़ी। उसे शहर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष से मिलना था। लीलाधर को उसने अभिवादन किया और कहा—'भूलिए नहीं इस रेखा को।' और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह चली गई। शायद उसका हृदय भर आया था।

१४

गोरखपुर मे इस बार लीलाधर का समय बहुत अच्छी तरह बीत गया। पिछली बार जहाँ एक दिन भी पहाड की तरह बोझिल प्रतीत होता था, इस बार तीन दिन का समय बात-की-बात में गुजर गया। इसके दो कारण थे : एक तो लीलाधर के पिता को कई महीने यहाँ आए हो चुके थे, अतः उनके परिचय की परिधि काफी विस्तृत हो चुकी थी। दूसरे, पंकज नामक एक शिक्षित तरुण का विशेष रूप से इस घर मे आने-जाने का क्रम जारी हो गया था।

पकज इसी वर्ष प्रयाग विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट हुआ है। गोरखपुर मे ही उसका घर है। उसके पिता जमींदार है। उनका इरादा पकज को वकालत पास कराने का है। सोचते हैं, जमींदारी में रात-दिन अदालत-कचहरी लगी रहती है। बहुत-सा पैसा वकीलों की जेबों मे भरना पड़ता है। पंकज यदि वकील हो जाएगा, तो यह पैसा घर मे ही रहेगा। और, पंकज को भी वकील होकर स्वतन्त्र जीवन बिताना पसन्द है।

पंकज की इस पसन्दगी का एक कारण और है। वह राष्ट्रीय विचारों का पोषक है। पिछले अगस्त-आन्दोलन मे वह गिरफ्तार भी

हो चुका था। लेकिन कुछ महीनों के बाद बिना किसी शत के जेल-मुक्त कर दिया गया था।

अपने घर मे इस पंकज का नियमित रूप से आने-जाने का क्रम देख, पहले तो लीलाधर को नागवार गुजरा। लेकिन जब उसे यह पता चला कि पंकज सजातीय है और उसके पिता से लीलाधर के पिता का काफी मेल-जोल बढ़ रहा है, तब उसे कोई आपत्ति न रही। और, अलका से जब लीलाधर को यह पता चला कि पंकज के साथ लता के हाथ पीले किए जाने का भी विचार चल रहा है, तब उसकी रही-सही आपत्ति भी जाती रही। अलका ने लीलाधर से कहा था कि आपकी सलाह लेने के लिए ही पिताजी इस सम्बन्ध को तय करने के लिए रुके हुए है। अब आप आ गए हैं, तो आपसे इस संबंध मे पिताजी अवश्य बात करेंगे।

और, आज ही सबेरे सचमुच पिताजी ने दफ्तर जाने के पहले यह बात छेड़ी थी। पंकज के सम्बन्ध मे, लीलाधर को सारी बातें बतलाते हुए कहा था—'अब तुम जैसा ठीक समझो, वैसा किया जाए। लता के पाणिग्रहण का निश्चय करना मेरी अपेक्षा, तुम्हारा ही अधिक कर्त्तव्य है।'

लीलाधर ने तीन दिन रहकर पंकज को जो कुछ देखा-समझा है, उसके आधार पर वह अपनी बहिन का हाथ उसे सौपने मे कोई विशेष बुराई नहीं समझता। वर के चुनाव मे सम्पन्न घर, शिक्षित वर और सौजन्य का ही प्रधान रूप से विचार किया जाना चाहिए। और, इन तीनों दृष्टिकोणों से पंकज का चुनाव उत्तम कहा जा सकता है। यदि कोई बात लीलाधर को यत्किञ्चित् खटकती है, तो यही कि पंकज मे जो राष्ट्रीयता है, वह कभी अनियन्त्रित न हो जाए। ऐसा होने पर लता का दाम्पत्य जीवन अधिक सुखी न रह सकेगा।

यह बात नहीं कि लीलाधर एक उच्च पदस्थ सरकारी अधिकारी है,

इसलिए राष्ट्रीयता की भावना को वह अच्छा न समझता हो। नहीं, यह बात बिलकुल नहीं। राष्ट्रीयता का वह प्रशंसक है, समर्थक भी। लेकिन देश-काल की परिस्थितियों का विचार न कर, राष्ट्रीय भावना के अनियन्त्रित आवेग को वह अच्छा नहीं समझता। डिपुटी कलेक्टर है वह। कितने ही मुकदमों मे वह राष्ट्रीय तरुणों को जेल की सजा स्वयं दे चुका है। इन मुकदमों के सिलसिले मे उसने देखा है कि अधिकाश तरुणों मे यह भावना सोद्देश्य न होकर, मात्र-अनुकरण की भावना के कारण उद्भूत होती है और उसकी धारा एकदम अनियन्त्रित होती है। तूफान के झोके मे मानो वे उड़ जाते हैं, अपने-आपको सँभाल नहीं पाते। कितने ही ऐसे तरुण,जेल की चहारदीवारी मे बन्द हो जाते है, जिनके आश्रित सर्वथा दूसरों के मोहताज हो जाते है। उनके परिवार की दशा अत्यन्त दयनीय हो उठती है। न खाने-पीने का कोई सहारा रह जाता है, न तन की लाज ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्रों का ठिकाना। और, ऐसी ही मुसीबतों के बीच उनके परिवार मे जब कोई बीमार हो जाता है, तो उनके उपचार का प्रश्न बहुत ही जटिल हो जाता है। दूसरों के नुस्खों अथवा भगवान् के भरोसे ही उन्हे रहना पड़ता है और उनकी जीवन-लीला लडखडाने लगती है।

लीलाधर स्वीकार करता है कि देश की आजादी के लिए परिवार की चिन्ताएँ महत्त्वपूर्ण नहीं, लेकिन परिवार को इस प्रकार दूसरों की दया का पात्र बना देना सामाजिक कर्त्तव्य से च्युत हो जाना है। परिवार का उत्तरदायित्व सहज नहीं। यदि आजादी के कँटीले मार्ग पर अग्रसर होने की उद्दाम भावना हमारे हृदय मे हिलोरें लेती है, तो हमे अपने व्यक्तित्व को पारिवारिक उत्तरदायित्व से दूर ही रखना चाहिए। एक साथ उत्तर और दक्षिण दिशाओं मे कदम बढ़ाना सम्भव नहीं। मातृ-भूमि की गुलामी की जंजीरों को तोड फेंकने की भावना को जब हम कार्यरूप मे परिणत करना चाहते हैं, तो परिवार

की झंझटो से दूर रहना ही बुद्धिमानी है। और, यदि हम परिवार को अपने पीछे बॉध लेते है, तो उसके भरण-पोषण तथा सुख-सन्तोष का ध्यान रखना हमारा प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए।

मन मे यह विचार-धारा प्रवाहित होते ही लीलाधर को अपनी बहिन लता का ध्यान आ गया। उसे लगा कि तरुणाई की उमगों को लेकर लता अपने दाम्पत्य जीवन मे प्रवेश करेगी। सदा सुखों के बीच जीवन की साँसे लेनेवाली लता का जीवन-सूत्र जब पकज के साथ सम्बद्ध होगा, तब शायद वह स्वप्न मे भी यह पसन्द न करेगी कि पंकज जेल के सींखचों मे जाकर बन्द रहे और वह उसके नाम की माल जपा करे।

माना कि यह व्यक्तिगत सुख की बात है। लेकिन जो जिस वातावरण मे पलता-पनपता है, उसके संस्कार भी बहुधा वैसे ही होते है। और, इस स्थल पर लीलाधर का दार्शनिक एक क्षण के लिए थोड़ा रुक गया—उसे रुकना पड़ा। सामाजिक विधानों की विचित्रता पर मन-ही-मन एक ग्लानि से भर उठा। उसे लगा कि समाज को इन बातों का खयाल रखकर ही दो प्राणियों का जीवन-सूत्र सम्बद्ध करना चाहिए। लेकिन समाज है कि इन बातों पर शायद कोई विचार नहीं करना चाहता।

यदि इन बातों पर विचार करने की भावना हमारे समाज मे होती, तो रेखा-जैसी राष्ट्रीय विचार-धारा पर तिरनेवाली कुमारी को आजीवन अविवाहित रहने का कठिन प्रण न करना पड़ता। वास्तव मे होना तो यह चाहिए कि राष्ट्रीय विचारों के पोषक तरुण के साथ राष्ट्रीय विचारोंवाली कुमारी के ही हाथ पीले किए जाएँ। फिर वह लता और पंकज के सम्बन्ध को कैसे ठीक कह दे?

सन्ध्या समय जब पिताजी भोजन करके बैठक मे आए, तो

लीलाधर ने उनसे साफ़-साफ कह दिया कि लता का सम्बन्ध मेरी समझ मे पकज के साथ तय करना ठीक न होगा।

पिताजी ने आश्चर्यान्वित होकर लीलाधर की बाते सुनीं-समझीं। गम्भीर होकर उन्होने कहा—'जिस गहराई मे उतरकर तुमने इस मामले पर विचार किया है, मैंने यह सब कभी सोचा ही नहीं था। लेकिन दूसरा कोई अच्छा वर अभी हमारी दृष्टि मे है नहीं।'

'प्रयत्न करना होगा, पिताजी!' लीलाधर ने कहा—'फिर ऐसी जल्दी क्या है? लता अभी चौदह वर्ष की ही है न! एकाध साल के भीतर ही हम लोग अपने प्रयत्न में सफल हो जाएँगे।'

'और मान लो, पकज से अधिक योग्य वर न मिला तो?'

'तब भी प्रयत्न करने मे हानि क्या है?'

'लेकिन पंकज के पिता से मैं कह चुका हूँ कि तुम्हारे आने पर मैं इस मामले मे कोई निश्चित उत्तर दे दूँगा। अब तुम्हारे चले जाने पर वह मुझसे निश्चित उत्तर चाहेगे न?'

'कह दीजिए कि लीलाधर दो-एक साल के बाद ही विवाह करने के पक्ष मे है। पकज को वकालत पास कर लेने दीजिए।' लीलाधर ने कहा—'और, इस बीच लता को मेरे ही पास लखनऊ मे रहने दीजिए।'

'लता स्वयं यही चाहती है। वह अपनी भाभी के साथ रहना ही अधिक पसन्द करती है।' फिर एक क्षण रुककर तिवारीजी ने कहा—'हाँ, तुम अपनी माताजी को भी इस मामले मे समझा दो अपना दृष्टिकोण।'

'मैं उन्हे आज दोपहर मे ही यह सब समझा चुका हूँ।' लीलाधर ने कहा—'उन्हे कोई आपत्ति नहीं है।'

'क्यों होगी उन्हे कोई आपत्ति? दामाद का जेल मे जाना उन्हें कब अच्छा लगेगा?' और मुसकरा उठे तिवारीजी।

'एक बात और आपसे कहनी है।' लीलाधर ने कहा—'दो-तीन महीने की छुट्टी लेकर आप भी लखनऊ आकर रहिए। माताजी भी रह लेंगी इस सिलसिले मे मेरे पास।'

'तुम अपनी माँ को जब चाहो, ले जा सकते हो। छुट्टी लेना मैं ठीक नहीं समझता। वक्त-बेवक्त के लिए उसे सुरक्षित रखनी चाहिए। बीमारी आदि के समय काम पड़ती है ऐसी छुट्टी।'

'जिन्दगी भर काम करते रहने का मैं समर्थक नहीं।' लीलाधर ने कहा—'कभी आराम भी तो करना चाहिए। फिर बीमारी आदि के समय यदि छुट्टी न भी बकाया रही, तो आप चिन्ता क्यों करते है इतनी? मुझे इस योग्य आपने बना दिया है कि दो-एक साल भी यदि आपको बिना वेतन छुट्टी पर रहना पडे, तो भी कोई परेशानी न होगी हम लोगों को।'

तिवारीजी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। पुत्र का यह ममत्त्व और अपनत्त्व उन्हे बहुत सुखद प्रतीत हुआ। कहा उन्होंने—'तुम्हारी इच्छा है, तो दिवाली के समय एक महीने की छुट्टी लेकर हम लखनऊ आएँगे।'

पिता का आश्वासन पाकर लीलाधर बच्चों की तरह अपनी माँ के पास दौड़ा गया। माँ से जब उसने पिताजी के लखनऊ आने की बात कही, तो उन्हे भी बहुत प्रसन्नता हुई।

इसके बाद लीलाधर अपनी तैयारी मे जुट गया और लता तथा अलका के साथ उसी रात गोरखपुर से लखनऊ वापस चला गया।

१५

लखनऊ आकर लता को बहुत भला लगा। गोरखपुर में वह जितने दिन रही, माता-पिता की छत्रच्छाया मे उसे मर्यादा की सीमा मे ही रहना पडा। माना कि अलका भाभी उसके साथ वहाँ भी थीं। लेकिन जिस आजादी से वह यहाँ लखनऊ मे अपने भाई-भाभी की छत्रच्छाया मे रहती है, जिस खुले दिल से और जब जी चाहे, भाभी से मनचाही बातें कर सकती है, वह सब गोरखपुर मे सम्भव नहीं था। फिर, पंकज का चाहे जब आना और जब तब विवाह की चर्चा छिड़ जाना भी लता के लिए गोरखपुर मे एक अप्रिय-सी बात थी।

यह बात नहीं कि विवाह से उसे नफ़रत हो अथवा वैवाहिक बधन में वह अपने-आपको बाँधना स्वीकार न करती हो। लेकिन अपने ही विवाह की घनी-घनी चर्चा सुनना उसे अच्छा नहीं लगता। फिर जब तक पंकज घर मे रहता, लता को माता-पिता की मर्यादा का खयाल रखते हुए घर के किसी कोने मे छिपकर बैठ जाना पड़ता था। और, यह एकान्तवास उसे जेलखाने जैसा कष्टकर प्रतीत होता।

वैवाहिक बंधन को लता बुरा नहीं समझती। वह अपने भैया-भाभी

का दाम्पत्य जीवन बहुत निकट से देख रही है। इस जीवन की विशेष-ताओं को भी अब वह बहुत-कुछ समझने लगी है। इस दशा मे वह किसी योग्य जीवन-साथी के साथ अपना जीवन-सूत्र सम्बद्ध कर देने की कल्पना को मन-ही-मन साकार करती और अप्रकट कल्पना-लोक मे विचरने लगती।

आज जब लीलाधर अपने इजलास को चला गया, और भाभी दोपहरी मे नित्य की तरह आराम करने लगीं, तब लता अपने भाई के बैठकखाने मे जा पहुँची।

लीलाधर की मेज पर पडे आज के अखबार वह उठा रही थी कि अचानक एक मोटी-सी और सुन्दर जिल्द पर उसकी दृष्टि जा अटकी। उस पुस्तक का गेट-अप इतना आकर्षक था कि लता उसे उठाकर देख लेने का लोभ-संवरण न कर सकी। पुस्तक का नाम था 'कच्चा धागा' और उसी के नीचे बारीक अक्षरों मे छपा था 'मौलिक सामा-जिक उपन्यास।' और आवरण पृष्ठ पर बने चित्र के नीचे लता ने जब देखा कि इस उपन्यास की लेखिका है रेखा, तो उसकी जिज्ञासा बाँध तोड़ बैठी। रेखा? उसकी अपनी सहेली! क्या वही रेखा इस उपन्यास की लेखिका है?

उलट-पलटकर लता ने देखा, तो पाया कि हाँ, उसकी सहेली रेखा ही इस उपन्यास की लेखिका है। यह प्रति उसने लता के भाई लीलाधर को भेंट मे भेजी है। लता वहीं आराम कुरसी पर बैठ, इस उपन्यास मे उलझ गई। आज के अखबार पढ़ने की उसे सुधि ही नहीं रही। तन्मय होकर वह उपन्यास पढ़ने लगी। बड़ा रोचक लग रहा है उसे यह उपन्यास।

घड़ी की सुइयाँ बराबर अपनी गति से डायल पर चलती रहीं। बीच-बीच मे दीवार घड़ी ने घंटे और आध घंटे की टनटनाहट भी

जारी रक्खी, लेकिन लता को इस सबकी कोई खबर नहीं। वह तो अपनी सहेली का उपन्यास 'कच्चा धागा' पढ़ रही है—पढ रही है। आज शायद इसे समाप्त करके ही वह उठेगी।

उधर अलका जब आराम कर चुकी और उसकी आँख खुली, तो देखा, तीन बज चुके हैं। आँखे मलकर वह पलग पर से उठ बैठी। बरामदे मे आकर देखा, रसोइया एक कोने मे बैठा-बैठा सुरती फाँक रहा था।

अलका ने रसोइया से पूछा—'लता कहाँ है महाराज ?'

'साहब के कमरे मे।' रसोइया ने कहा—'बुलाऊँ क्या ?'

'नहीं। मैं वहीं जा रही हूँ।'

और दबे-पैरो अलका जब बैठकखाने मे पहुँची, तो देखा कि बिजली का पखा अपनी रफ्तार से चल रहा है और आराम-कुरसी पर लता अधलेटी सो रही है। उसके हाथों मे कोई पुस्तक अब तक दबी हुई है।

चुपके-चुपके अलका उसकी आराम-कुरसी के पीछे जाकर खडी हो गई। यत्नपूर्वक लता के हाथों मे दबी पुस्तक को उसने ज्यों ही झटक लेना चाहा कि लता की आँख खुल गई। भाभी को अपने निकट देख, लता ने कहा—'ओह। तुम हो भाभी !'

'तुम क्या समझी थीं, बिटिया ?' अलका ने चुटकी लेते हुए कहा 'शायद अपने भावी साजन का·······।'

'इतना गज़ब न करो, भाभी !' लता ने कहा—'भला, तुम्हारे पास रहते हुए किसी साजन-वाजन का मुझे भ्रम ही क्यों होगा ? फिर, अभी तो मैं इस दुनिया से बाहर हूँ न !'

'भ्रम नहीं, तो सपना भी नहीं देखा जा सकता क्या ?' अलका ने फिर उसे छेडते हुए कहा।

'छोड़ो भी इन बातों को।' लता ने कहा—'आज दोपहरी भर पढ़ती रही मैं। देखो, यह उपन्यास है। रेखा ने लिखा है। वही रेखा,

जो प्रयाग मे उस दिन हमे जमुना-पुल के पास गौ-घाट पर मिली थी।' और वह उपन्यास भाभी के हाथ पर धर दिया लता ने।

'कच्चा धागा!' अलका ने कहा—'नाम बहुत आकर्षक है। तुमने पढ़ लिया इसे?'

'हाँ।'

'यह बात है!' आवरण पृष्ठ पलटते हुए अलका ने कहा—'तुम्हारे भाई साहब को भेंट मे भेजी है यह पुस्तक रेखा ने!'

'इसमे आश्चर्य की क्या बात है, भाभी!' लता ने कहा—'उस दिन तुमने देखा नहीं था, हम लोगो से उसकी कितनी घनिष्ठता है। सालों हम लोग पड़ोसी रहे है।'

'जानती हूँ, बिटिया।' अलका ने कहा—'गोरखपुर मे माताजी ने यह भी बतलाया था कि रेखा के साथ तुम्हारे भैया के विवाह की बातचीत भी चल पड़ी थी। लेकिन माताजी ने स्वीकार नहीं किया वह सबंध। खैर, मैं इसे बुरा नहीं समझती। परिचय और घनिष्ठता जहाँ होती है, वहाँ एक-दूसरे को भेंट देना-दिलाना भी चलता ही है। आज के जाग्रत युग मे यह सब क्षम्य है।' और मुसकरा उठी अलका।

'लेकिन भैया कभी उसकी ओर आकर्षित नहीं हुए।' लता ने शायद अपनी भाभी के दिल मे उठती किसी शका का समाधान करते हुए कहा—'हाँ, उन्हे रेखा के प्रति सहानुभूति अवश्य है। सामाजिक-विधान की विडम्बना के कारण वह बेचारी अब तक कुमारी है—शायद जीवन भर कुमारी ही रहेगी।'

'कैसी विडम्बना?' प्रश्न किया अलका ने।

'यही कि रेखा की माँ के पास यदि यथेष्ट संपत्ति होती, तो बहुत सम्भव है, हमारी माताजी भैया का विवाह उसके साथ करने के लिए तैयार हो जातीं। भैया इसे बुरा समझते हैं। उनका कहना है कि रुपयों के बल पर जीवन का सूत्र किसी के साथ बाँधने का सौदा नहीं

होना चाहिए, और रेखा के मन पर भी इसी कारण गहरी चोट लगी है। कदाचित् इसीलिए वह अब तक कुमारी है—किसी के साथ विवाह नहीं करना चाहती।' फिर एक क्षण रुककर कहा लता ने—'और इन्हीं सब बातों की पृष्ठभूमि पर इस 'कच्चा धागा' नामक उपन्यास का निर्माण किया है रेखा ने।'

'इसका नाम 'कच्चा धागा' क्यों रखा है रेखा ने?' अलका ने प्रश्न किया।

'नारी के प्रति पुरुष के आकर्षण को—उसके प्रेम को—अस्थिर सिद्ध किया है। नारी के प्रति पुरुष को धोखेबाज और गैर ईमानदार भी बतलाया गया है।'

'तो यह कहो कि पुरुष के प्रति नारी का विद्रोह है इस उपन्यास मे?' अलका ने कहा।

'नहीं।' लता ने कहा—'पुरुष के प्रति नहीं, बल्कि समाज के प्रति नारी का विद्रोह है।'

'आश्चर्य तो यह है कि कुमारी रहकर रेखा को पुरुष और नारी के इस कार्यकलाप और उसके प्रेम-सम्बन्धों की कटुता अथवा मिठास का अनुभव कैसे हुआ!' अलका ने आश्चर्यान्वित मुद्रा में कहा—'रेखा गजब ढा रही है। मैं तो यही जानती हूँ कि भारतीय कुमारी—हिन्दू कुमारी—को पुरुष और नारी के प्रेम-प्रकरण का कोई पता नहीं रहता—रहना भी नहीं चाहिए।'

'तो क्या तुम यह कहना चाहती हो भाभी कि आजीवन कुमारी रहकर भी भारतीय नारी यह सब समझे बिना रही आएगी?'

'हाँ, भारतीय नारी का धर्म और आदर्श यही है।'

'आदर्श कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसका दुनिया के सभी भू-भागों पर समान अस्तित्व हो। देश-काल के अनुसार दुनिया मे समय-समय पर भिन्न-भिन्न आदर्शों का जन्म हुआ। भारतीय समाज के आदर्श मे एक

विवाह ही स्तुत्य है; लेकिन अफ्रीका मे कागो नदी के कछार मे रहने-वाली जगली जातियो मे बहुविवाह की प्रथा आदर्श मानी जाती है। वहाँ जिस पुरुष की कम-से-कम दस पत्नियाँ न हो, उसे पुरुष नहीं समझा जाता—समाज मे उसका कोई सम्मान नहीं किया जाता। यही नहीं, बल्कि कभी-कभी तो ये जगली अपने पड़ोसियों पर केवल इसलिए धावा बोल देते है कि उसकी स्त्रियों को छीनकर अपनी पत्नियों की सख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि कर सके! वहाँ यही आदर्श है।'

'मैं जगली जातियो की बात नहीं करती।' अलका ने कहा—'भारत आज जगली नहीं है। वह सस्कृत हो चुका है। और, मैं सस्कृत मानव की ही बात करती हूँ।'

'अच्छा, रूस को तुम सस्कृत समझती हो या नहीं?'

'हाँ।'

'तो रूस के ही सामाजिक आदर्श क्या हैं, इसे भी सुन लो भाभी!' लता ने कहा—'राजनीतिक बिचारधारा मे रूस ने जिस प्रकार क्रान्तिकारी परिवर्तन किए है, सामाजिक परम्पराओं पर भी उसने आशातीत प्रहार किए हैं। वहाँ सतीत्व की अपेक्षा मातृत्व की महिमा अधिक आँकी जाती है। माताएँ राष्ट्र के भावी नागरिकों की जननी है और बच्चे भावी नागरिक। इसलिए माताओ और बच्चों के स्वावलम्बन तथा भरण-पोषण के लिए राष्ट्र ने क्रान्तिकारी व्यवस्थाएँ की है। सन् १९२१ मे बोल्गा के तटवर्ती भू-भागों की खेती पर प्रकृति का प्रकोप हुआ। लोगों मे ग़रीबी और भुखमरी का ताण्डव होने लगा। विपत्ति-काल मे कितनी ही नारियाँ अविवाहित अवस्था मे ही माताएँ बनने लगीं और भ्रूण-हत्या ज़ोर पकड़ने लगी। यों सोवियत विधान भ्रूण-हत्या के खिलाफ़ था। लेकिन देश को सर्वनाश से बचाने का खयाल कर एक क़ानून बनाकर भ्रूण-हत्या जायज क़रार दी गई। शर्त यह रखी गई कि भ्रूण-हत्याएँ सरकारी सस्थाओं मे की जा सकेंगी। महिला

डाक्टरों के समक्ष भ्रूण-हत्या की इच्छा रखनेवाली नारियों को उपस्थित होना पड़ता और गर्भिणी के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए भ्रूण-हत्या का प्रबन्ध कर दिया जाता। तीन महीने से अधिक का गर्भ गिराए जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। भ्रूण-हत्या का यह क्रम १५ वर्षों तक जारी रहा। इस बीच देश भर मे हज़ारों मातृ-सदन खोले गए, जिनमे सन्तान उत्पन्न होते ही शिशुओं को राष्ट्र की धरोहर के रूप मे ले लिया जाता है। 'राष्ट्र अपने खर्च से उनका भरण-पोषण और शिक्षण करता है।' फिर एक क्षण रुककर लता ने कहा—'यही नहीं, कुमारियों को बच्चे जनने पर वहाँ पुरस्कृत किया जाता है, भाभी!'

'क्या कह रही हो, लता?' अलका ने चौकते हुए कहा—'यह सब मजाक-सा लगता है मुझे।'

'मैं बिलकुल दुरुस्त कह रही हूँ, भाभी!' लता ने कहा—'तुम्हे शक हो तो भैया से पूछ देखना।'

'मुझे जरूरत ही क्या, जो ऐसी अनाचारपूर्ण बाते उनसे पूछने की कोशिश करूँ। लेकिन ऐसा क्यों होता है वहाँ?'

'इसलिए कि राष्ट्र की जनसख्या मे वृद्धि करना अनेक दृष्टिकोणों से वहाँ वाले ठीक समझते है। आजकल जब देखो तभी एक देश दूसरे से युद्ध ठान बैठता है न! और युद्धों मे जो अपरिमित नर-बलिदान होता है, उसकी पूर्ति कैसे हो? इसीलिए रूस मे कुमारी माताओं को बारह वर्ष तक एक बच्चे के लिए १००, दो के लिए १५० और तीन अथवा तीन से अधिक बच्चो के लिए २०० रुबल्स (रूस के सिक्के) मिलते है। विवाहित स्त्रियों को भी अधिक सन्तान उत्पन्न करने और उनका भरण-पोषण करने के लिए तरह-तरह के पदक प्रदान किए जाते है। जो गरीब हों, उनकी सन्तान को राष्ट्र अपने सरक्षण

मे ले लेता है। लेकिन माता-पिता को यह अधिकार है कि वह कभी भी अपने बच्चे को राष्ट्रीय-सरक्षण से अपने सरक्षण मे ले सकता है।'

'तुमने यह सब कहाँ पढा है, बिटिया ?' अलका ने जानना चाहा।

'युद्ध के चलते भैया के पास जा अखबार और सरकारी विवरण-पत्र आते थे, उन्ही मे ये बाते मैंने कभी पढ़ी थीं। आज प्रसग छिड़ गया, तो मैंने सोचा, तुम्हे भी बतला दूँ। अब तुम्हीं कहो, जिसे हम आदर्श कहते है, वह क्या है ? यह तो भिन्न-भिन्न समाज और देश की आवश्यकतानुसार निर्धारित की जानेवाली ऐसी वस्तु है, जो सदा एक सी नहीं रह पाती। हमारे भारत मे ही कभी स्वयवर-प्रथा को आदर्श माना जाता था, लेकिन आज तो माता-पिता द्वारा वर का चुनाव ही आदर्श है। ऐसी हालत मे तुम रेखा को आदर्शहीन नहीं कह सकतीं, भाभी !'

'मैंने उसे आदर्शहीन नहीं कहा, लता !' अलका ने कहा—'मैं सिर्फ़ यही कह रही हूँ कि कुमारी रहकर उसे नारी और पुरुष के प्रेम-व्यवहार का मीठा-कड़वा अनुभव आखिर कैसे हुआ ?'

'कुछ तो स्वयं अपने विवाह की समस्या को लेकर और बहुत-कुछ दूसरों को देख-सुनकर अथवा पुस्तकें पढ़कर।'

'अच्छा, मै भी इस उपन्यास को पढ़ूँगी—आज ही रात मे।'

'ना भाभी!' लता ने मजाक किया—'ऐसा भूलकर भी न करना।'

'क्यो ?'

'रात को तुम उपन्यास पढ़ोगी, तो भैया नाराज़ होंगे।' और लता मुसकराती हुई उस कमरे से बाहर चली गई।

लीलाधर के इजलास से लौटने का समय हो चुका था। अतः लता ने महाराज को चाय-नाश्ता तैयार करने का आदेश दिया। अलका भी बैठक से उठकर भीतर आ गई।

१६

इजलास से लौटकर लीलाधर ने बहिन लता और पत्नी अलका के साथ चाय पीते हुए कहा—'आज रात को मैं भोजन नहीं करूँगा, लता।'

'क्यों?' लता ने ध्यानपूर्वक लीलाधर की तरफ़ देखते हुए पूछा—'तबीयत तो ठीक है न?'

'बिलकुल ठीक है।' लीलाधर ने मुसकराते हुए कहा—'कहीं कोई शिकायत नहीं है।'

'तब कहीं दूसरी जगह भोजन करेंगे आज?' लता ने दूसरा प्रश्न किया।

लीलाधर इस प्रश्न का कुछ उत्तर दे कि इसके पहले ही अलका ने कहा—'यह भी कोई पूछने की बात है, बिटिया! तुम्हारे भाई साहब चाय, भोजन और सिगरेट कभी नहीं छोड़ सकते। यहाँ तक कि डॉक्टर भी कभी मना करे तो ये माननेवाले नहीं। किसी मित्र के यहाँ दावत होगी, इसीलिए भोजन न करने की बात कह रहे हैं।'

'इतना तो मैं, भी समझ रही हूँ, भाभी ! लेकिन दावत कहाँ होगी, यही जानने के लिए मैंने प्रश्न किया है।'

'तुम भी चलोगी मेरे साथ ?' लीलाधर ने परिहास के स्वर मे कहा लता से।

'भाभी को ले चलें, तो मै भी चलूँगी।' लता ने कह दिया।

'बिना बुलाए यदि तुम्हारी भाभी किसी दावत मे, चलना चाहे, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।'

'बुलाने-बुलाने पर भी जो किसी दावत मे नहीं जाती, वह भाभी बिना बुलाए देवताओं की दावत में भी नहीं जा सकती।' अलका ने तुनककर कह दिया।

'यह कोई अच्छी बात थोडे ही है।' लीलाधर ने कहा—'मेरे प्रायः सभी साथी सपत्नीक पहुँचते है दावतों मे। लेकिन तुम हो कि कहीं चलना ही नहीं चाहतीं।'

'भारतीय नारी होकर मै भारतीय मर्यादा का पालन करना ही उचित समझती हूँ। यह तो नई रोशनी की चकाचौंध का प्रभाव है कि पुरुषों के हाथ मे हाथ डालकर स्त्रियाँ भी दावतों मे सम्मिलित होने लगी है। और, इसका परिणाम भी तो अच्छा नहीं होता। यह मेरा सौभाग्य है कि आप डिप्टी कलैक्टर हैं। लेकिन नई रोशनी से प्रभावित होकर मैं अपनी गृहस्थी का सुख-सौभाग्य नष्ट नहीं करना चाहती।'

'मैंने तो परिहास किया था, अलका।' लीलाधर ने कहा—'मैं जानता हूँ कि तितलियों की तरह जो नारियाँ पुरुष वर्ग से खुलकर मिलती-जुलती है, उनका गार्हस्थ्य-जीवन सच्चे अर्थों मे सुख का आगार नहीं रहने पाता।' और तब लता की तरफ मुखातिब होकर कहा लीलाधर ने—'आज मैं एडवोकेट मदनगोपालजी के यहाँ भोजन करूँगा। क्लब से सीधा वहीं चला जाऊँगा, ताकि लौटने मे अधिक

देर न हो। यों कोई बडी दावत नहीं है उनके यहाँ। फिर भी दो-चार मित्रों के साथ भोजन करने और गपशप करने मे समय लगता ही है।' और लीलाधर अपने कपडे बदलकर क्लब की तरफ़ चल पड़ा।

लीलाधर के चले जाने पर लता ने कहा—'लो भाभी, अब तुम्हे रेखा का उपन्यास पढने के लिए काफी समय मिल जाएगा। भैया आज ग्यारह बजे से पहले शायद ही लौट सके।'

जल्दी लौट आते, तो क्या मैं उपन्यास न पढ सकती?'

'यह तो तुम जानो, भाभी!' लता ने कहा—'लेकिन भैया के जल्दी लौटने पर कुछ तो बाधा पडती ही।'

'आजकल चुहलबाजी ज्यादा सूझने लगी है तुम्हे।' अलका ने कहा—'क्यों न हो, भावी साजन की झाँकी देख चुकी हो न, सो बुनती रहती होगी उन्हीं के ताने-बाने। इस उम्र मे ऐसा ही होता है। तरुणाई का ज्वार है न।'

'किसी की झाँकी-वाँकी से मैं क्यों उलझने लगी?' लता ने कहा—'हाँ, इस प्रसग मे तरुणाई के कुछ अनुभव तो ज्ञात हो ही रहे हैं अपनी भाभी द्वारा। बल्कि यों कहना चाहिए कि तरुणाई के ज्वार पर मेरी भाभी बह रही है आजकल। मैं तो बहुत दूर हूँ इस ज्वार से।'

'यह न कहोगी कि बहुत निकट हो, बिटिया!' अलका ने आडे हाथों लेना चाहा लता को—'तुम्हारे भैया की स्वीकृति के लिए ही सारा मामला रुका हुआ है, नही तो अब तक पहुँच भी गई होतीं अपने साजन के घर। लेकिन तुम्हारे भैया कहते है कि वकालत पास हो जाए लड़का, तब विवाह करना ठीक होगा।'

'घूम-फिरकर हर बात मे विवाह की चर्चा करने लगती हो, भाभी!' लता ने कहा—'यह अस्त्र तुम्हे अच्छा हाथ लगा है।'

'अस्त्र नहीं, यह तुम्हारे तन-मन को प्रफुल्लित करने का एक अवलम्ब है!' अलका ने कहा—'अब तुम सयानी हो रही हो।

सोचती हूँ, भाभी के पास रहकर भी यदि तुम्हे इस प्रसन्नता का अनुभव न हुआ, तो फिर कहाँ होगा। इसलिए कभी-कभी मजाक कर बैठती हूँ।'

'मैं तुमसे कैफ़ियत तलब नहीं कर रही हूँ, भाभी! तुम्हे अधिकार है इस मजाक का।'

'कैफियत क्यो तलब करोगी?' अलका ने कहा—'मैं कोई ऐसी बात थोड़े ही करती हूँ, जिससे तुम्हारे सुकुमार हृदय पर कोई चोट पहुँचने की आशका की जा सके। मुझे तो विश्वास है कि मेरी बातों से तुम्हें आन्तरिक प्रसन्नता होती होगी।'

'और, मैं इससे इनकार करूँ तो?'

'किस बात से?'

'प्रसन्नता की बात से।'

'तो यह तुम्हारे अन्तर की आवाज़ न होगी, इसका मुझे विश्वास है।'

'इसका कोई आधार?'

'मेरा अपना अनुभव।' अलका ने मुसकराते हुए कहा—'बोलो, अब स्वीकार करोगी या नहीं मेरी बात?'

'अस्वीकार करने की गुजाइश ही कहाँ है अब?' और मुसकराती हुई लता, भाभी के पास से उठकर अपने कमरे मे चली गई।

भाभी की आज की बातें लता के अन्तस्तल मे अब तक हलचल मचा रही है। हॉ, हलचल ही इसे कहना पडेगा। लता के अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि भाभी ने परिहास मे जो-कुछ भी आज कहा है, वह सर्वथा ठीक है।

जब से लता ने अपने भावी साजन की एक झाँकी देखी है, वह अप्रत्याशित रूप से मन-ही-मन उनकी काल्पनिक मूर्ति को लेकर, जाने क्या-क्या ताने-बाने बुनते रहने की आदी हो चली है। और, भाभी ने

ठीक ही तो कहा है कि इस उम्र मे ऐसा होता ही है। तरुणाई का ज्वार है न!

लता को सन्तोष है कि वह किसी अस्वाभाविक प्रेरणा से प्रेरित नहीं हो रही है। शिक्षित, स्वस्थ और सम्पन्न वर की ओर यदि वह मन-ही-मन आकृष्ट हो चुकी है, तो यह अनुचित नहीं है। फिर, उसके भैया—लीलाधर—जिस वर का चुनाव बहुत-कुछ स्वीकार कर चुके हैं, उसके—पंकज के—प्रति उसका आकृष्ट होना किसी मर्यादा का उल्लघन भी तो नहीं है। तभी लता को लगा, जो कहीं पकज की राष्ट्रीयता के कारण भैया ने यह सबध तय न किया तो? तब क्या लता भी पंकज की काल्पनिक मूर्त्ति को अपने मानस-पटल से सदा के लिए धो डालने मे समर्थ हो सकेगी? लेकिन अभी से इसकी चिन्ता क्यों करे वह? जब जो होगा, देखा जाएगा। अब तक जो स्थिति है, वह किसी अस्वाभाविकता का शिकार नहीं हुई है। अपनी भाभी की तरह लता भी भारतीय मर्यादा के दायरे मे ही रहना उचित समझती है। आगे भी इसी दायरे मे रहने का यत्न करेगी।

फिर, राष्ट्रीयता से उसके भैया—लीलाधर—को कोई घृणा तो है नहीं। पंकज के साथ यदि अब तक भैया ने उसके विवाह-सम्बन्ध की स्वीकृति व्यक्त नहीं की है, तो इसकी पृष्ठभूमि पर उसकी—लता की—ही कल्याण-भावना है। राष्ट्रीयता की भैया सराहना करते हैं। कितने ही ऐसे मुकदमे भैया के इजलास मे आ चुके है, जिनमे राष्ट्रीयता के उपासको के अभियोगों का निर्णय उन्होंने यथासम्भव उदारता के साथ ही किया है। देश की आजादी के लिए भैया स्वय कितने चिन्तित रहते हैं, इसे दूसरे क्या जाने? दुनियावाले तो उन्हे डिपुटी कलैक्टर के ही रूप मे जानते है। लेकिन राष्ट्रीय अभियुक्तों को कानून के दायरे में रहते हुए जब-जब भैया ने कोई सजा दी है, घर आकर उनकी चिन्ता अप्रकट नहीं रह सकी। एक अपूर्व

मानसिक वेदना से वह ऐसे अवसर पर छटपटा उठते है। लेकिन यह सब हम लोगो तक ही सीमित है। दुनियावाले इसे नहीं जानते। दुनिया पर वह अपनी भावनाएँ प्रकट भी नही करना चाहते। कहते है, व्यक्तिगत भावनाओ की रक्षा करना और कर्त्तव्य का पालन करना एक ही समय मे बहुधा असम्भव हो जाता है। ऐसी स्थिति मे लता यह कैसे मान ले कि राष्ट्रीय भावनाओ के कारण ही लीलाधर ने पकज के साथ लता का विवाह-सम्बन्ध तय न करने का कोई निश्चय किया है।

लीलाधर ने तो लता के भावी दाम्पत्य-सुख का ध्यान रखते हुए ही फिलहाल यह सम्बन्ध स्थगित रखने की बात कही है। पकज जब तक वकालत पास करेगा, तब तक—दो साल मे—उसकी राष्ट्रीय गतिविधि का भी पूरा-पूरा पता चल जाएगा और तब भैया को अपना निश्चित मत व्यक्त करने मे भी बहुत-कुछ सहूलियत होगी। लता को विश्वास है कि पकज के साथ ही उसके हाथ पीले किए जाएँगे। वह मन-ही-मन कामना करने लगी कि देश-काल की स्थिति उसके अनुकूल रहे और पंकज के साथ उसके विवाह की जो बातचीत चल पड़ी है, वह कभी न टूटे।

लता इस पकज की ओर इतनी आकृष्ट न भी होती; लेकिन इस बार गोरखपुर मे जब तक वह रही, प्रायः नित्य ही पकज उसके घर आता रहा। इस सिलसिले मे लता ने कभी कोई आधी बात भी पंकज से नहीं की। ऐसा करना उचित भी नहीं था। परन्तु परिवार के लोगों से पंकज की बातचीत को उसने ध्यानपूर्वक सुना है। उसकी बातचीत को सुनकर पंकज की स्वाभाविक सरलता का बहुत कुछ अनुमान हो चुका है लता को! अपने भैया लीलाधर के स्वभाव से बहुत साम्य है पकज के स्वभाव मे। निश्छल और सरल!

जब तक लता दुनियादारी अथवा दाम्पत्य जीवन की कोई बात

समझती नहीं थी, तब तक इन बातो पर वह कभी ध्यान नहीं देती थी। लेकिन अब पहले-जैसी बात नहीं रही। अब लता सयानी हो चुकी है। तरुणाई की लहरों पर उसका तन-मन बहने लगा है। भैया-भाभी के दाम्पत्य जीवन को अब वह ध्यानपूर्वक देखती-सुनती और बहुत-कुछ समझने का यत्न भी करती है। बहुत प्रभावित हुई है वह अपने भैया-भाभी के मधुर जीवन-सम्बन्धों से।

यही कारण है कि अब वह पकज के साथ ही अपने जीवन-सूत्र का सम्बद्ध हो जाना अधिक अच्छा समझती है। वह भी अपनी भाभी की तरह अपने जीवन को सदा सुखी देखने की कल्पना करने लगी है। यह कल्पना पकज की छाया मे ही साकार हो सकने की उसे आशा है।

बहुत देर तक आज लता अपने कमरे मे बैठी-बैठी इन बातों मे उलझती रही। महाराज ने आकर जब भोजन बन जाने की सूचना दी, तब कहीं लता का ध्यान भंग हुआ। भाभी के साथ जाकर वह भोजन करने लगी।

१७

आज एडवोकेट मदनगोपाल अग्रवाल क्लब नहीं गए। जिन दो-चार मित्रों को आज उन्होंने अपने घर दावत मे बुलाया है, आखिर उनके आगत-स्वागत का भी कुछ प्रबन्ध करना होगा न! माना कि उन्हे अपने हाथो कोई काम नहीं करना है। घर मे चतुर गृहिणी है, जो भीतर का प्रत्येक काम अपनी देख-रेख मे कराने और कभी-कभी—विशेषकर दावत आदि के समय—स्वयं अपने हाथों करने की आदी है। नौकर-चाकर है, जो ऊपरी तैयारी करने मे कुछ उठा नहीं रखते। अग्रवालजी ने उन्हे ऐसा ट्रेण्ड कर दिया है कि सकेत पाकर ही वे सब-कुछ कर लेते है। फिर भी, आतिथेय की आतुरता से वह अपने-आपको मुक्त अनुभव नहीं करते।

जिन मित्रों को अग्रवालजी ने आमन्त्रित किया है, वे साधारण व्यक्ति नहीं हैं। सबके सब सरकारी उच्च-पदाधिकारी हैं। रात-दिन उनसे अग्रवालजी का काम पड़ता है। एक एडवोकेट होकर इन सरकारी उच्च पदाधिकारियों से मेल-जोल बनाए रखना ही अग्रवाल जी अपने धन्धे के लिए हितकर समझते हैं।

अदालत से अपना काम हो जाने पर आज अग्रवालजी सीधे अपने घर आ गए हैं। इधर-उधर किसी से गपशप कर तनिक भी समय उन्होंने नष्ट नहीं किया।

बैठकखाने की सजावट और सफ़ाई देख, अग्रवालजी को आन्तरिक सन्तोष हुआ। फर्श पर बढ़िया कालीन बिछा हुआ था। कोच और कुर्सियाँ यथास्थान सजाकर रक्खी गई थीं। चारों कोनों मे चार धूपदान रक्खे हुए थे, जिनके पास ही फूलदान भी ताजे और सुगन्धित पुष्पो से गमक रहे थे। बीच मे छत से लटकता बिजली का एक बड़ा-सा बल्ब जगमगा रहा था। एक ओर दीवार के निकट रेडियो रक्खा हुआ था।

एक कोच पर बैठकर अग्रवालजी अपनी थकान मिटाने लगे और निमन्त्रित मित्रो की प्रतीक्षा करने लगे। सामने ही दीवार पर महात्मा गान्धी का एक तिरङ्गा चित्र था। इसी चित्र पर अग्रवालजी की दृष्टि केन्द्रित थी। इस युग-पुरुष गान्धी को मन-ही-मन अग्रवाल जी ने प्रणाम किया। उनके अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि शताब्दियो के पदाघात से मूर्च्छित और असहाय भारतीय राष्ट्र के इतिहास ने इसी युग-पुरुष—मोहनदास करमचन्द गान्धी—की प्रेरणा से एक अभूतपूर्व करवट ली है। जीवन के समस्त वैभव-विलासों को ठुकराकर इस महापुरुष ने अर्द्ध-नग्न फकीर का वेश धारण कर भारतीय पुरुष का वास्तविक रूप जगत् के सामने रक्खा। सुषुप्त भारत मे नव-चेतना का सचार करने मे इसे बहुत सफलता मिली। इसके विराट् व्यक्तित्व ने ही हमे नवयुग की स्थापना और स्वतत्र होने का सन्देश सुनाया।

पं० जवाहरलालजी नेहरू के वे शब्द अग्रवालजी के अन्तस्तल मे गूँज उठे, जो महात्मा गान्धी की सतहत्तरवीं वर्षगाँठ के अवसर पर उन्होंने कहे थे—'महीने या साल का कोई भी दिन क्यों न हो,

गान्धीजी की याद सदा हम लोगों के मन मे रहती है। उन्होने हमारे राष्ट्रीय जीवन को प्रेरणा दी है। चाहे इसे हम समझें या न समझे, हम लोगों का वर्त्तमान वैयक्तिक या राष्ट्रीय जीवन अधिकाश रूप मे उन्हीं की देन है।"

इसी बीच बॅगले के सामने किसी की मोटर के आने की आवाज़ ने अग्रवालजी का ध्यान भंग कर दिया। महात्मा गान्धी के चित्र से उनकी दृष्टि हट गई। उन्हे लगा कि मित्रो को दावत का आमन्त्रण देकर, इस प्रकार राजनीतिक गुत्थियो मे उलझ जाना उचित नहीं; लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होने मन ही मन कहा—इसमे उचित-अनुचित का प्रश्न ही क्या है? दावत की तैयारी हो चुकी है। मित्रों के आगमन की प्रतीक्षा मे ही मैं बैठा हूँ।

कोच से उठकर अग्रवालजी बैठकखाने के बाहर गए। देखा, तरुण डिप्टी कलेक्टर लीलाधर तिवारी आ पहुँचे है। उनके निकट पहुँचकर अग्रवालजी ने कहा—'आइए। मैं बहुत देर से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

'सो तो मैं जानता था कि आप मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आमन्त्रण देकर प्रतीक्षा करनी ही चाहिए।' और अग्रवालजी के साथ बैठकखाने मे लीलाधर ने प्रवेश किया।

१८

अग्रवालजी का बैठकखाना आज अप्रत्याशित रूप से सजाया गया था। लीलाधर ने एक कुरसी पर बैठकर चारों तरफ़ नजर फेकी। अग्रवालजी ने इस बीच कैप्स्टन सिगरेट का डिब्बा लीलाधर के सामने बढ़ाते हुए कहा—'लीजिए, सिगरेट सुलगाइए।'

लीलाधर ने एक सिगरेट निकाल अपने ओठों मे दबाया और अग्रवालजी ने माचिस की तीली जलाकर अपना और लीलाधर का सिगरेट सुलगाया।

सिगरेट का एक कश खींच और नाक से ढेर-सा धुआँ निकालते हुए लीलाधर ने कहा—'क्लब से सीधा आपके यहाँ आ रहा हूँ, अग्रवालजी! सोचा, घर जाऊँगा, तो विलम्ब हो जाएगा। लेकिन देखता हूँ कि अब तक आपके निमन्त्रित मित्रों मे से कोई नहीं आया है।'

'समय की पाबन्दी की आशा प्रत्येक भारतीय से नहीं की जा सकती।' अग्रवालजी ने कहा—'आठ बजे का समय मैंने दिया है।

लेकिन आठ बजे तो आमन्त्रित मित्र अपने घर से चलने की तैयारी करेंगे।'

'और साढ़े आठ के पहले शायद ही कोई यहाँ पहुँचे।' लीलाधर ने कहा—"आज के मशीन युग मे भी हमारे देशवासी समय की पाबन्दी का ध्यान नहीं रखते, तो क्या इक्कीसवीं सदी मे रखेंगे।"

'बाईसवीं सदी मे भी यदि यह हो जाए, तो हमे गनीमत समझनी चाहिए।'

इसी समय दूसरे डिप्टी कलेक्टर सुशीलकुमार श्रीवास्तव आ पहुँचे। अपने अधपके बालो पर एक हाथ फेरते हुए और चश्मे को नाक पर यथास्थान जमाते हुए एक कुरसी पर बैठकर बोले—'तिवारी जी का लैक्चर चल रहा है। बहुत तर्कसंगत बात होती है इनकी।' और अग्रवालजी की तरफ दृष्टिनिक्षेप करते हुए कहा—'मैं तो इनकी तर्कसगत बातों का परिचय उसी दिन पा चुका था, जिस दिन बगाल की पार्टी के नृत्य और सगीत का आयोजन आपने किया था।'

'गनीमत है कि आप भी तिवारीजी के तर्क का लोहा मानने लगे।' अग्रवालजी ने कहा और लीलाधर की तरफ देखकर मुसकरा उठे।

लीलाधर को यह जानकर आन्तरिक प्रसन्नता हुई कि मानसिक व्यभिचार पर उसने नृत्य और सगीत प्रदर्शन के दिन, इन श्रीवास्तव जी को जो मीठी-सी फटकार सुनाई थी, वह व्यर्थ नहीं गई।

अब तक अन्य आमन्त्रित व्यक्ति भी आ चुके थे, अतः चल रहे प्रसग की जानकारी भी श्रीवास्तवजी को नहीं हो सकी। शायद उन्होंने इसकी आवश्यकता भी नहीं समझी।

अग्रवालजी ने लीलाधर की ओर देखते हुए कहा—'तो अब दावत शुरू होनी चाहिए न?'

'जैसा आप ठीक समझें।' लीलाधर ने कहा—'आए तो है हम लोग दावत के ही लिए।'

'बुलाया भी मैंने दावत के ही लिए है।' अग्रवालजी ने कहा—'मेरा मतलब सिर्फ़ यही है कि आप लोगों को कोई एतराज़ न हो, तो मैं थालियाँ परोसने की व्यवस्था कराऊँ?'

'एतराज जिसे होता, वह यहाँ तक आता ही क्यों?' लीलाधर ने कहा—'और, बातचीत तो खाते-खाते भी चल सकती है।'

अग्रवालजी ने यह सकेत पाकर नौकर को आगत मित्रों का हाथ-मुँह धुलवाने का आदेश दिया। स्वय भीतर जाकर गृहिणी को थालियाँ परोसने का सकेत किया और महराजिन को बैठकखाने के निकटवाले कमरे मे थालियाँ ले आने का आदेश दिया।

अगरेजी ढग पर ही दावत की व्यवस्था की गई थी। मेज-कुरसियाँ तरतीबवार लगाई गई थीं। प्रत्येक मेज पर धूपदानियों मे अगरु का सुगन्धित धूम्र आमन्त्रित मित्रों का स्वागत कर रहा था। छोटे-छोटे सुन्दर फूलदानो मे प्रत्येक मेज पर तरह-तरह के फूल सजाकर रक्खे गए थे। परोसी हुई थालियाँ भी मित्रो के पहुँचने के पहले ही मेज़ों पर रक्खी जा चुकी थीं। मित्रों के पहुँचते ही महराजिन गरम-गरम पूड़ी-कचौडी परोसने लगी। बगाली मिठा-इयाँ और नमकीन, मोहनभोग और चटनी, रायता तथा कई प्रकार की तरकारियाँ और तले पापड़ भी थालियो मे परोसे गए।

मित्रो के साथ अग्रवालजी भी एक मेज़ पर परोसी थाली के सामने कुरसी पर जा बैठे और भोजन शुरू किया गया। इधर-उधर की गप-शप के साथ दावत चलती रही।

लीलाधर ने कहा—'अग्रवालजी, दावत तो आपने बहुत बढ़िया दी है। लेकिन यह किस उपलक्ष्य मे दी गई है, यह आपने अब

तक नहीं बतलाया। यदि अनुचित न समझें, तो मैं जरूर जानना चाहूँगा।'

'इस दावत का कोई खास कारण नहीं है।' अग्रवालजी ने कहा—'ता० २ सितम्बर, १६४६ को अन्तर्कालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के उपलक्ष्य मे हमारे देश के सभी राष्ट्र-प्रेमियों ने उल्लास प्रकट किया है। मैं भी उस दिन अपने घर मे घी के दीपक जलाकर अपना उल्लास प्रकट कर चुका हूँ। लेकिन अपने इस उल्लास को आप लोगों पर भी प्रकट करने का उपाय मैंने इस दावत को ही समझा।'

'लेकिन प० जवाहरलाल नेहरू ने तो अपने एक वक्तव्य मे कहा है कि अभी किसी प्रकार का उल्लास प्रकट करने का अवसर नहीं आया है। स्वतन्त्रता अब भी हमसे बहुत दूर है। हाँ, स्वतंत्रता का मार्ग अपेक्षाकृत अधिक प्रशस्त हो गया है।' लीलाधर ने अग्रवालजी को निरुत्तर करना चाहा।

'मार्ग प्रशस्त हो गया है,' अग्रवालजी ने कहा—'यही क्या कम सन्तोष की बात है? स्वतन्त्रता-प्राप्ति के संघर्षपूर्ण इतिहास मे क्या इसे अभूतपूर्व अवसर नहीं कहा जाएगा कि जिस कांग्रेस को सरकार अनेक बार विद्रोही करार दे चुकी थी, उसी के हाथों आज शासन की बागडोर उसने दे दी है!'

'आप ठीक कह रहे है।' श्रीवास्तवजी ने अग्रवालजी का समर्थन किया।

'अच्छा, तो इस दावत के लिए मैं सभी आमंत्रित मित्रों की ओर से आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।' लीलाधर ने कहा।

इसी प्रकार की गपशप के बीच दावत जब समाप्त हुई, तो रात के दस बज चुके थे। पान-सिगरेट के बाद सभी लोगों ने अपने-अपने घर की राह ली।

मानसिक धरातल पर रह-रहकर किसी तूफान की तरह हलचल मचा रही है।

अग्रवालजी ने कहा था कि अन्तर्कालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना पर उन्हे इतना हर्ष हुआ था कि २ सितम्बर को उन्होने अपने घर मे घी के दीपक जलाए थे। और, उसी हर्षोल्लास को प्रकट करने के लिए कल उन्होने अपने मित्रों को दावत दी थी। लीलाधर को स्वयं प्रसन्नता है कि काग्रेस के हाथो देश के शासन की बागडोर आ गई। देश के सभी राष्ट्रप्रेमियो को इस अवसर पर प्रसन्नता का अनुभव होना सर्वथा स्वाभाविक है। लेकिन राजा का स्वर्ण-मुकुट, देखनेवालो को जितना सुखद प्रतीत होता है, पहननेवाले को वह उतना ही भारी और गहन उत्तरदायित्व से बोझिल लगता है। शासन की बागडोर सँभालना काँटो की राह पर चलने से कम कष्टकर नहीं। माना कि काग्रेस के नेता कॉटों की राह पर चलने के आदी है। पैरों मे काँटे चुभने की पीड़ा उन्हे पथभ्रष्ट नहीं कर सकती। स्वय पीड़ा सहकर दूसरों की पीड़ा कम करने मे एक आत्मीय सन्तोष होता है। परन्तु यह शासन की बागडोर सँभालकर यदि देशवासियों की पीड़ा कम करने मे अन्तर्कालीन राष्ट्रीय सरकार को शीघ्र सफलता न मिली, तो काग्रेसी नेताओं को तनिक भी आत्मसन्तोष न होगा।

देश की उलझी हुई राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को हल करना शीघ्र सम्भव नहीं। विदेशी शासन ने देश को हर तरह से बरबाद कर दिया है। इस दशा मे नई सरकार को न केवल आगे होनेवाली बरबादी को रोकना होगा; प्रत्युत तमाम भारतीयों को स्वतत्र भारत मे खुशहाली के मार्ग पर ले जाना होगा।

लेकिन सभी सम्प्रदायों के पारस्परिक विश्वास का प्रश्न बड़ा टेढ़ा है। विभिन्न सम्प्रदायों मे हमारे देश मे पारस्परिक भय का भूत समाया हुआ है। और, इसकी जड़ भारत मे अंग्रेज़ों के आने के पहले का

राजनैतिक और सामाजिक इतिहास ही कहा जाएगा। पहले की बात को छोड भी दिया जाए, तो पिछले पचास-साठ सालों मे ही ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष मे अपने स्वार्थ के लिए साम्प्रदायिकता का गहरा विष बोने मे क्या कुछ कमी रहने दी है? उसने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जान-बूझकर अविश्वास पैदा कर दिया है।

कलकत्ते मे मुसलिम लीगी मन्त्रिमण्डल के हाथो प्रान्त का शासन-सूत्र है। वहाँ के प्रधान मन्त्री मि० सुहरावर्दी ने १६ अगस्त, १९४६ को आम तातील की घोषणा करके मुसलिम लीग द्वारा 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' किए जाने की दिशा मे जो गर्हित कदम उठाया, उसने कलकत्ता महानगरी मे प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। खुलेआम लीग-विरोधी हिन्दू-मुसलमानो पर सामूहिक रूप से मुसलिम-लीगियों का आक्रमण, घरों मे आग लगा देना, खुलेआम दूकानें लूट लेना, सड़को पर ही नहीं, घरों मे घुस-घुसकर आबाल-वृद्ध-वनिताओं को अकारण छुरे भोंक-भोंककर मौत के घाट उतार देना और महिलाओं पर बलात्कार करना आदि ऐसी दर्दनाक घटनाएँ घट चुकीं, जिन्हें कलकत्ते के रक्त-रंजित इतिहास का अमिट कलङ्क कहा जाएगा। 'चार दिनो मे सात हज़ार नर-नारी मौत के घाट उतार दिए गए और लगभग बीस हज़ार घायल कर दिए गए। कलकत्ते की सड़कें और नालियाँ मानव-लाशों से पट गईं। लाखों आदमी इस लीगी मंत्रिमण्डल की छाया से प्राण बचा, कलकत्ता छोडकर भाग गए।....

साम्प्रदायिकता के इस ज़हरीले वातावरण को जब तक विशुद्ध नहीं किया जाता—वह चाहे जिन तरीकों से हो—तब तक भारत सुखी नहीं हो सकता। मानव की इस दानवता को—मात्र साम्प्रदायिक कटुता से लोगो को बेरहमी के साथ कत्ल करने की पैशाचिकता को—कुचलने की आज सबसे पहली आवश्यकता है।

लीलाधर जानता है कि इस पैशाचिकता की भावना को प्रश्रय

देनेवाले—चाहे वे मुसलमान हों या हिन्दू—अधिक समय तक यह कत्लेआम जारी नहीं रख सकते। लेकिन वर्त्तमान स्थिति मे इनका यह उत्पात, हमारे देश की स्वतन्त्रता को हमसे बहुत दूर किए दे रहा है। ऐसी स्थिति मे, बकौल प० जवाहरलाल नेहरू, अभी हमे प्रसन्न नहीं होना चाहिए।

इन्हीं भाव-धाराओ पर लीलाधर बह रहा था कि अर्दली ने आज की डाक लाकर, उसके सामने मेज पर रख दी।

सरकारी डाक के अतिरिक्त एक लिफ़ाफ़े ने विशेष रूप से लीलाधर का ध्यान आकृष्ट किया। लिफ़ाफ़े पर जो पता था, उसकी लिपि से लीलाधर परिचित है। रेखा का पत्र था यह। उत्सुकता के साथ लीलाधर ने लिफ़ाफ़ा खोला और पढ़ा :—

२१, कालेज स्ट्रीट,
कलकत्ता
१५ अगस्त, १६४६

"यह पत्र पाकर आप चौंकेंगे। लेकिन चौंकिए नहीं। शायद आप जानते होंगे कि यहाँ मेरी एक सहेली है अंजना, वही जिसे पहुँचाने मैं इलाहाबाद स्टेशन पर उस दिन गई थी, जब आप पहली बार लखनऊ से मेरे पास आए थे और स्टेशन पर अचानक मुझे देखकर आपको कुछ आश्चर्य भी हुआ था।

"अजना का आग्रह था कि मैं कभी कलकत्ता आऊँ। परसों मुझे उसके इस आग्रह पर यहाँ आ जाना पड़ा है। दस दिन की छुट्टी लेकर आई हूँ। लेकिन कलकत्ते का साम्प्रदायिक वातावरण आजकल बहुत विषम प्रतीत हो रहा है। कल १६ अगस्त, १६४६ को मुसलिम लीग 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' मनाने की तैयारी कर रही है। लीगी मन्त्रि-मण्डल है यहाँ। कल आम तातील है। पता नहीं, इस प्रत्यक्ष कार्य-वाही मे क्या होगा?

"लोगो मे आम भय समा चुका है। मैंने भी प्रयाग वापस जाने की इच्छा प्रकट की। परन्तु अजना कहती है, 'एक दिन रहकर ही तुम चली जाओगी ? यह ठीक नहीं। आखिर हम लोग भी तो तुम्हारे साथ कलकत्ते मे ही है ! जो-कुछ होगा, पहले हम लोगों पर। तुम्हारे प्राणों की रक्षा हम लोग अन्तिम साँस तक करेंगे। फिर, निश्चयपूर्वक कौन कह सकता है कि दगा होगा ही।'

"इस दशा मे मुझे रुक जाना पड़ा। अब जो-कुछ होगा, अपनी आँखों देखूँगी और फिर आपको लिखूँगी। बहिन अलका और लता के साथ आपको सस्नेह नमन। स्नेहशीला,

रेखा"

पत्र पढकर लीलाधर स्तब्ध रह गया। यह रेखा ऐसे वक्त कलकत्ता आखिर गई क्यों ? लेकिन यह प्रश्न जो लीलाधर के अन्तस्तल में उठ रहा है, इसका उत्तर रेखा ने अपने पत्र मे साफ़-साफ़ लिख भेजा है। अंजना का आग्रह था। और, आग्रह करनेवाली को या आग्रह पूरा कर कलकत्ता पहुँचनेवाली को पहले से यह पता ही क्या रहा होगा कि १६ अगस्त से १६ तक कलकत्ते मे खुले-आम गदर हो जाएगा।

रेखा का खुला पत्र लीलाधर की आँखों के सामने मेज पर रखा था। रेखा के लिए उसका चिन्तित हो उठना स्वाभाविक था। कलकत्ते मे पाकिस्तानी छाया में बीतनेवाले चार खूनी दिनों का जो समाचार वह अखबारों में पढ़ चुका था, वे इस पत्र के आने के पहले ही लीलाधर को यथेष्ट विचलित कर रहे थे। अब रेखा का पत्र पाकर, लीलाधर की आँखों के सामने वे समाचार जैसे साकार होकर नाचने लगे। उन चार रक्त-रञ्जित दिनों की लोमहर्षक घटनाएँ फिर एक बार उसके अन्तस्तल मे आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन करने लगीं। कितनी वीभत्स थीं वे घटनाएँ, जिनमें अबोध शिशुओं को जलती आग मे झोंक दिया गया, नारियों पर न केवल बलात्कार किया गया, बल्कि उनके स्तन काटकर, उन्हे केशों के सहारे छतों से लटका दिया गया—एकदम

नग्नावस्था में। चार-चार पाँच-पाँच मंजिलों से जीवित नर-नारियों और बच्चों को नीचे सडको पर फेक दिया गया और नीचे खडे गुण्डों ने उन मृतप्राय व्यक्तियों पर भी लाठियों और छुरों के वार कर उन्हे यमलोक पहुँचा दिया।

कितने खूख्वार वे दिन रहे होंगे और कितनी वीभत्स एव भयावनी राते बीती होंगी। भगवान् जाने, इन घड़ियों में रेखा का क्या हुआ होगा?

लीलाधर का दिमाग भन्ना उठा। उसने ध्यानपूर्वक रेखा के पत्र पर पड़ी हुई तारीख देखी, तो पता चला कि यह पत्र १५ अगस्त को रेखा ने लिखा है। लेकिन लीलाधर को आज ८ सितम्बर, '४६ को मिला है। इतने दिन कहाँ गायब रहा यह पत्र? तीन दिन मे साधारणतः कलकत्ते से लखनऊ पत्र आ जाना चाहिए; लेकिन २३ दिन मे आ सका यह पत्र!

गनीमत है कि पत्र इतने दिनों के बाद भी उसे मिल गया, नहीं तो ऐसे हजारों-लाखों पत्रादि पता नहीं, कहाँ, किस प्रकार कलकत्ते मे ही मानव-रक्त के पनालों मे बह चुके होगे।

कुछ देर के बाद लीलाधर प्रकृतिस्थ हो सका। अब उसे ध्यान आया कि रेखा ने आँखो देखा हाल लिख भेजने की बात लिखी है। लेकिन उसका दूसरा पत्र तो आज तक नहीं आया। परन्तु दूसरे ही क्षण लीलाधर के मन मे एक आशका उद्भूत हुई, कहीं रेखा भी किसी दानव के खंजर का निशाना न बन चुकी हो! ईश्वर न करे कि रेखा इस प्रकार दुनिया से उठ जाए!

उसी क्षण लीलाधर ने एक जरूरी और जवाबी तार रेखा के पते पर लिखा और अर्दली को बुलाकर उसे तार-घर भेज दिया।

लीलाधर का मन आज बहुत उदास रहा—बहुत चिन्तित। रेखा की कुशलता जानने के लिए वह अधीर हो रहा था। लेकिन उसने अपनी व्यग्रता परिवार मे किसी पर व्यक्त नहीं की।

२०

चौबीस घण्टे गुजर गए, लेकिन रेखा को भेजे गए जवाबी तार का कोई उत्तर लीलाधर को न मिला।

इन चौबीस घण्टों के दरम्यान उसने जिस धैर्य से काम लिया है, उस पर उसे स्वय आश्चर्य होता है। अपनी मानसिक पीडा को उसने किसी पर व्यक्त नहीं होने दिया। यह बात भिन्न है कि मानसिक अवसाद की रेखाएँ उसके चेहरे पर बराबर उभरकर उसकी उथल-पुथल का स्पष्ट सकेत करती रहीं। लेकिन इतने पर भी लीलाधर ने अपनी बहिन लता और पत्नी अलका को यह नहीं बतलाया कि रेखा की कुशलता के लिए वह व्यग्र है।

लीलाधर जानता है कि यह बतलाने पर अलका को बहुत चोट लग सकती है। एक कुमारी के प्रति लीलाधर की आत्मीयता का आभास-मात्र ही अलका के लिए बहुत कष्टकर हो सकता है। फिर, इतने दिनों तक जिस रेखा के प्रति लीलाधर ने अपनी आत्मीयता को अलका से अप्रकट रक्खा, उसे सहसा इस रूप मे व्यक्त कर देना

वह ठीक नहीं समझता। माना कि यह बहुत बड़ा दुराव है—अलका के प्रति लीलाधर का छल है, लेकिन इस छल को प्रकट कर देना तो बहुत बड़ी भूल होगी और होगा अन्याय।

लीलाधर की मानसिक गुत्थियाँ उत्तरोत्तर उलझती जा रही हैं। वह अधिक से अधिक आज तीन-चार बजे तक रेखा को भेजे गए जवाबी तार के उत्तर की प्रतीक्षा करेगा। इसके बाद वह स्वयं कलकत्ता जाएगा—उसे जाना पडेगा। जिस रेखा का निश्छल स्नेह पाया है, जिस रेखा की पवित्र आत्मीयता मिली है लीलाधर को, उसकी कुशलता का पता लगाए बिना वह रह नहीं सकता।

सबसे बड़ी चिन्ता जो लीलाधर को परेशान कर रही है, वह है : यदि वह कलकत्ता गया, तो अलका से क्या कहेगा? क्या अलका से फिर झूठ बोलना होगा? हाँ, यही करना होगा। इसके सिवा कोई चारा नहीं। वह जानता है, अलका से यह दुराव अनुचित है। लेकिन अनुचित होने पर भी अलका के लिए यह कष्टकर जो नहीं है। अलका को वह व्यर्थ किसी मानसिक पीड़ा का शिकार नहीं बनाना चाहता।

लीलाधर के चेतन मन ने उसे कुछ सजग किया। वह क्या सोच रहा है यह सब? अलका से दुराव करने की कोई आवश्यकता नहीं। वह रेखा के प्रति लीलाधर के आकर्षण को बहुत-कुछ भाँप चुकी है। रेखा ने अपने उपन्यास 'कच्चा धागा' की जो एक प्रति लीलाधर को भेंट मे भेजी थी, वह भी अलका देख चुकी है। उसे वह पढ़ भी चुकी है। लता से इस उपन्यास को लेकर जाने कितनी ही बातें अलका पूछ चुकी है। लता ने स्वय एक दिन लीलाधर से कहा था—'भैया, रेखा का उपन्यास भाभी को बहुत अच्छा लगा। लेकिन एक कुमारी को दुनिया की रंगीनियों का इतना गहरा ज्ञान हो सकता है, इसमे भाभी को सन्देह है।'

'सन्देह !' लीलाधर ने दोहराया था।

'हाँ !' लता ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा था—'भाभी की समझ मे, भारतीय कुमारी को पुरुष के प्रेम अथवा उसके छल-कपट का इतना ज्ञान हो नहीं सकता—होना नहीं चाहिए।'

'अपने-अपने विचार है।' लीलाधर ने कह दिया था—'मैं तो इतना ही जानता हूँ कि रेखा सन्देह के परे है। उसका चरित्र दृढ़ है। वह आदर्श कुमारी है।' इससे अधिक कुछ कहना लीलाधर ने ठीक नहीं समझा था। बहिन की मर्यादा का ध्यान रखना ही उसने उचित समझा।

यह बात लीलाधर के अन्तस्तल मे कई दिनों तक उमड़ती-घुमड़ती रही थी। एकाध बार उसके मन मे आया था कि अलका से वह यह प्रसग छेडे। लेकिन ऐसा करना उसने ठीक नहीं समझा। लता की इस बात से यह तो स्पष्ट हो चुका था कि अलका को रेखा के प्रति लीलाधर के आकर्षण की एक झलक स्पष्टतः मिल चुकी है। सन्तोष की बात यही है कि अलका के मन मे इस बात को लेकर कहीं कोई मैल नहीं। यदि ऐसा होता, ता किसी-न-किसी रूप में वह प्रकट अवश्य हो जाता। नारी अपने आन्तरिक विक्षोभ को कभी छिपा नहीं सकती। और, यदि वह अपने मानस की उथल-पुथल को छिपा सकने मे सफल हो सकती है, तो यह उसकी महानता है।

ऐसी दशा मे अलका से किसी प्रकार का दुराव करना लीलाधर ने ठीक नहीं समझा। और, कलकत्ता जाने की जो बात अभी-अभी उसके मन म उद्भूत हो चुकी है, वह भी निरा पागलपन है। हाँ, पागलपन !

रेखा ने अपने पत्र मे स्पष्टतः लिखा है कि वह दूसरा पत्र भेजेगी। अपनी आँखों जो-कुछ भी वह कलकत्ते में देखेगी, उसकी सूचना वह

अवश्य भेजेगी। लेकिन न तो उसका दूसरा पत्र आया और न लीलाधर के जवाबी तार का उत्तर। इन बातों से स्पष्ट है कि रेखा या तो कलकत्ते के किसी अस्पताल मे घायल पड़ी होगी अथवा किसी जालिम के खूनी खजर का निशाना बन चुकी होगी।

लीलाधर की आँखे सहसा गीली हो आईं। एक ऐसी कुमारी के लिए उसका हृदय उमड़ आया, जिसका निश्छल स्नेह उसने पाया था। सामाजिक विधान की विपमता से उसका हृदय विक्षुब्ध हो चुका था। जीवन भर कुमारी रहकर उसने अपने जीवन की लम्बी यात्रा को पूरा करने का आश्चर्यजनक और कठोर निश्चय कर रक्खा था। श्रद्धा से उसका मस्तक नत हो गया, इस कुमारी के प्रति। बहुत दूर रहते हुए भी कितनी निकटता थी रेखा और लीलाधर में! एक कला-कर्त्री थी रेखा। राष्ट्रीय गतिविधि मे भी वह अपनी क्रियात्मक सेवाएँ अर्पित करने लगी थी। ऐसी कुमारी यदि इस प्रकार सहसा कलकत्ते के इस रक्त-स्नान मे शहीद हो चुकी हो, तो इससे अधिक लीलाधर को इस जीवन मे और क्या दुःख हो सकता है। कितना करुण अव-सान होगा यह!

राष्ट्रीय संग्राम में कहीं गोली का निशाना बनकर यदि रेखा का अवसान होता, तो अगणित राष्ट्र पुजारियों की तरह वह भी अपनी रेखा की समाधि पर जाकर कभी मूक श्रद्धाजलि अर्पित करता और यह कहकर सन्तोष करता :—

'शहीदों की चिताओं पर
लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरनेवालों का
यही बाकी निशाँ होगा।'

लेकिन उसकी समाधि का तो कहीं ठिकाना नहीं। उसका शव

कहाँ, किस नदी-नाले मे फेंक दिया गया होगा, इसका भी किसी को पता नहीं चल सकता।

इसी बीच आज का ताजा अखबार लाकर अर्दली ने लीलाधर की मेज़ पर रख दिया। अन्य समाचारों को पढते-पढते लीलाधर की दृष्टि इलाहाबाद के समाचारों पर जा अटकी। पहला शीर्षक देखकर ही वह स्तब्ध रह गया : 'उपन्यास-लेखिका और काग्रेस-सेविका रेखा का अवसान !'

काँपते हाथों और उमड़ते हृदय से लीलाधर ने एक साँस मे ही यह समाचार पढ डाला—"कलकत्ते के रक्त-स्नान मे कितने ही राष्ट्र-सेवकों और कलाकारों का भी खून हो चुका है। इतने दिनों बाद इलाहाबाद की प्रमुख काग्रेस-सेविका और उपन्यास-लेखिका कुमारी रेखा के करुण-अन्त का पता चल सका है। विगत १४ अगस्त को रेखा अपनी एक सहेली अंजना के आग्रह पर कलकत्ते गई थी। जाते समय शहर काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष से रेखा ने भेंट की थी। कहा था, दस पाँच दिन मे वह कलकत्ते से लौट आएगी। लेकिन कौन जानता था कि वह अन्तिम भेंट थी रेखा की। उसके जाने के बाद १६ से १६ अगस्त तक कलकत्ते मे जो नर-संहार हुआ, उसमे रेखा भी समाप्त हो चुकी। रेखा जब पिछले सप्ताह तक कलकत्ते से नहीं लौटी, तब शहर काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष स्वय कलकत्ता गए और कालेज स्ट्रीट मे जिस अंजना के यहाँ रेखा गई थी, उसका पता लगाया था। लेकिन अजना देवी का या कुमारी रेखा का कहीं कोई पता नहीं चला। पडोस मे पूछ-ताछ करने पर ज्ञात हुआ कि चौराहे पर मिलिटरी की लारी देखकर अंजना देवी का परिवार अपने घर से निकलकर रक्षा के आश्रय की आशा मे जब चौराहे की तरफ़ बढ़ रहा था, तभी लीगी मुसलमानो के एक दल ने इस परिवार पर धावा बोल दिया और अपने खूनी खजरो से सबको मौत के घाट उतार दिया।

पड़ोस के एक बंगाली सज्जन ने यह सब अपनी आँखों देखा था। आज सन्ध्या समय रेखा के अवसान पर शहर कांग्रेस कमेटी की ओर से एक शोक-सभा होगी।"

लीलाधर की रही-सही आशा भी जाती रही। रेखा के अवसान की जो आशंका वह कर रहा था, वह आखिर सच निकली।

बैठक से उठकर लीलाधर भीतर गया और लता के सामने आज का वह अखबार रख दिया। लता ने अपनी सहेली के निधन का समाचार पढ़ा, तो वह भी विचलित हो उठी—उसकी आँखों से टप्-टप् आँसू झर पड़े। लता ने जब अपनी भाभी अलका को रेखा के निधन का समाचार सुनाया, तो उसे भी बहुत दुःख हुआ। अलका की आँखें भी डबडबा आईं। कहा उसने—'रेखा बहुत प्रतिभा-सम्पन्न थी—असाधारण कुमारी। और असाधारण व्यक्ति अधिक दिनों तक दुनिया में रह नहीं पाते।'

लीलाधर का मन उस दिन किसी काम में नहीं लगा। वह इजलास भी नहीं गया। रह-रहकर रेखा का चित्र उसकी आँखों के सामने झूल उठता था। उसे आन्तरिक क्षोभ था कि रेखा के स्नेह का मूल्य वह किसी भी रूप में नहीं चुका सका। गौघाट पर मकर संक्रान्ति के दिन उसे दिए हुए वचन की रक्षा भी तो वह नहीं कर सका था। रेखा के स्नेह की वह सरासर अवज्ञा थी। और, इतने पर भी रेखा लीलाधर की सदा पूजा करती रही।

रेखा को खोकर लीलाधर को लगा कि उसके जीवन के सुख का बहुत-बड़ा अंश समाप्त हो चुका है। यद्यपि लीलाधर के जीवन में कहीं किसी प्रकार का अभाव नहीं; लेकिन रेखा के बिना उसे लगता है :

'अब न पहले बलबले हैं
और न अरमानों की भीड़।'

२१

किसी प्रियजन को खोकर मानव अपने-आपको अकिंचन समझ बैठता है। कुछ समय तक तो वह इतना विचलित दीखने लगता है कि गतात्मा के अभाव मे उसका जीवन दूभर-सा प्रतीत होने लगता है। लेकिन जो अज्ञात शक्ति मानव पर दुःखों का यह पहाड़ गिरा देती है, वही उसमे ऐसी क्षमता भी भर देती है कि धीरे-धीरे यह दुःख सह लेने का वह आदी हो जाता है।

रेखा का निधन-समाचार पढ़कर उस दिन लीलाधर भी ऐसा ही विचलित दीखने लगा था। उसकी बहिन लता और पत्नी अलका को ऐसा प्रतीत होने लगा था कि लीलाधर के जीवन मे यह घटना कहीं कोई व्यतिक्रम न उत्पन्न कर बैठे। लेकिन लीलाधर ने अपने-आपको कठोरता के साथ ऐसा-कुछ नियन्त्रित किया कि उसी दिन सन्ध्या-समय चाय पीने के बाद लता और अलका का यह अवसाद बहुत कुछ तिरोहित हो गया।

चाय पीते समय लता ने जान-बूझकर रेखा का प्रसग छेड़ते हुए

लीलाधर से कहा—'भैया, मुझे तो रेखा के निधन का समाचार झूठ मालूम पड़ता है।'

लता चाहती थी कि किसी तरह भैया को रेखा के निधन-समाचार से जो चोट लगी है, उसकी पीड़ा कुछ कम हो जाए। चूँकि वह उम्र मे लीलाधर से छोटी है, अतः सान्त्वना अथवा धैर्य बँधाने का शायद उसे अधिकार नहीं। लेकिन सीधे शब्दों मे सान्त्वना अथवा धीरज बँधाने का प्रयत्न न कर उसने घुमा-फिराकर लीलाधर को छेड़ा।

आश्चर्यचकित-सा लीलाधर लता की तरफ़ मुखातिब होकर बोला—'झूठ मालूम पड़ता है! तो अखबार मे छपी खबर पर भी तुम्हे विश्वास नहीं होता, लता?'

'आपने ही कभी यह कहा था भैया!' लता ने कहा—'कि अखबारों मे छपी सभी खबरे सत्य नहीं होतीं। यदि ऐसा होता, तो हिटलर और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु मे भी किसी को सन्देह करने की गुञ्जाइश न रह जाती। लेकिन हम देखते है कि सुभाष बोस के सम्बन्ध मे अब तक अखबारों मे यह छप रहा है कि आज पटने मे देखे गए, तो कल नागपुर में; अथवा आज रूस मे है, तो कल किसी और देश मे।'

लीलाधर को लता की इस बात पर हलकी-सी हँसी आ गई, कहा—'तुम्हारा कहना ग़लत नहीं है लता! मैं मानता हूँ कि अखबारो मे छपी सभी खबरे अक्षरशः सत्य नहीं होतीं, लेकिन कुछ न कुछ सचाई तो उनमे होती ही है। फिर, कांग्रेस-कर्मचारियो ने स्वय जाकर रेखा की खोज की है और पास-पड़ोसवालों की आँखों-देखी घटनाओं के आधार पर ही उसके निधन का समाचार छापा गया है। इस दशा में रेखा के निधन की खबर झूठ कैसे हो सकती है?'

'कलकत्ते की रक्तरंजित घटनाओं के बीच किसने कहाँ क्या देखा, इस पर सहसा विश्वास नहीं होता, भैया!' लता ने कहा—'सबको

अपने प्राण बचाने की पड़ी थी वहाँ। कौन किसे देखता ? अपने प्राण बचाने की धुन मे देखनेवाले की आँखे भी धोखा खा सकती है। फिर, कर्नल हबीबुर्रहमान ने भी तो सुभाष बाबू के वायुयान की दुर्घटना को अपनी आँखो देखने की बात कही है न ! लेकिन कौन उस पर विश्वास करता है ?'

'ईश्वर करे, तुम्हारी शका सच निकले, लता !' लीलाधर ने कहा—'यो रेखा हम लोगो के परिवार की नहीं, हम लोगों से उसका निकट का कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी उसने अपने सहज स्नेह और आत्मीयता से हम लोगों के हृदय मे अपना स्थान बना लिया है। यों कहना चाहिए कि उसके जीवन का मार्ग भी हम लोगों के कारण ही बदल गया है। इसलिए उसके प्रति एक अज्ञात सहानुभूति से मेरा हृदय भर उठता है। कितना अच्छा हो कि रेखा के निधन का समाचार ग़लत हो और वह इस दुनिया मे जीवित हो। यो मैं जानता हूँ, गीता मे भगवान् कृष्ण ने कहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्—
नाय भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽय पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

अर्थात् यह आत्मा किसी काल मे भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा होकर फिर होनेवाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है; शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'इतना समझने पर भी ताज़ी घटना सभी को द्रवित कर जाती है !'

और, चाय पीकर उस दिन लीलाधर नित्य की तरह टेनिस खेलने अपने क्लब चला गया।

लीलाधर के चले जाने पर अलका ने लता से कहा—'तुम बहुत

चतुर हो, बिटिया ! दिन-भर का अवसाद आज तुमने तनिक-सी देर मे बहा दिया। बडे कौशल से तुमने अपने भैया को छेड़ा।'

'मैंने सोचा कि दिन-भर से मुहर्रमी सूरत लिए बैठे हैं भैया !' लता ने कहा—'और यही हाल यदि बराबर रहा, तो बेचारी भाभी · ·।'

अलका ने अपनी एक हथेली लता के ओठों पर धरते हुए कहा—'इतनी शोख न बनो, बिटिया ! मैं जानती हूँ कि अब तुम्हारे हाथ फ़ौरन पीले कर देना चाहिए। इस बार पिताजी दिवाली की छुट्टियों मे आएँगे, तब मैं माताजी से साफ़-साफ़ कह दूँगी।'

'क्या कह दोगी, भाभी ?' लता ने अलका की हथेली को अपने ओठो पर से हटाते और कुछ तुनकते हुए पूछा।

'यही कि अब लता बिटिया के हाथ जल्द पीले कर देना चाहिए।'

'समझी !' लता ने कुछ गम्भीरता के साथ अलका भाभी को देखते हुए कहा—'शायद मेरे रहने से तुम्हारी आज़ादी मे खलल पड़ने लगा है, भाभी ! इसीलिए अब मुझे टालने की बात चाहे जब कहने लगी हो।'

अलका ने लता को अपने वक्ष से चिपकाते हुए कहा—'मेरी भोली लता ! तुम शायद सपने मे भी उस पीड़ा का अनुमान न कर सकोगी, जो इस घर से तुम्हारे चले जाने पर मुझे रात-दिन बेचैन करती रहेगी।'

स्नेहमयी भाभी के वक्ष पर अपना सिर टेके हुए लता ने पूछा—'तब क्यो तुम बारबार मेरे हाथ पीले कर देने की बात छेड़ती हो, भाभी ?'

'दो-एक बार तुम्हारी इस बात का उत्तर मैं दे चुकी हूँ।' अलका ने लता के सिर पर अपना हाथ सहलाते हुए कहा—'महज मजाक के सिलसिले मे तुम्हे छेड़ बैठती हूँ, बिटिया ! और वह भी तब, जब

मजाक का सिलसिला तुम स्वय जारी कर देती हो। लेकिन देखती हूँ कि मेरे मजाक को तुम गम्भीरता का रूप दे बैठती हो।'

भाभी के वक्ष से अपना सिर उठाते और तनिक हटकर खडे होते हुए लता ने कहा—'मैं अपनी कमजोरी महसूस करती हूँ, भाभी! लेकिन तुम मेरी बातो पर बुरा न माना करो।'

'तुम कभी भूलकर भी यह बात अपने मन मे न लाना, लता। अपनी सन्तान की बातों पर भी कोई कभी बुरा मानता है। तुम मेरे लिए सन्तान-जैसी ही हो। यह बात दूसरी है कि अब तुम सयानी हो चली हो, अतः कभी-कभी तुम्हे अपनी ननॅद के रूप मे छेड़ बैठती हूँ।'

ननँद-भाभी की बाते इस प्रकार चल ही रही थीं कि बाहर बरामदे में लगी 'काल बेल' (सूचना देनेवाली घण्टी) का बटन किसी ने दबाया। जोरों से घण्टी टनटना उठी।

'कोई बुला रहा है, भाभी!' लता ने कहा, फिर तनिक जोर से आवाज़ लगाते हुए कहा—'महाराज, जरा देखो तो कौन है?'

महाराज सन्ध्या का भोजन तैयार कर रहा था। चौके से बाहर आते हुए कहा उसने—'अच्छा बिटिया!' और हाथ धोकर बाहर चला गया।

दो-तीन मिनट के भीतर ही महराज ने आकर कहा—'कहीं का तार आया है। दस्तखत करना है।'

'तुमसे पचासो बार कहा, महराज!' अलका ने कहा—'कि दस्तख़त करना सीख लो। न जाने, कब क्या ज़रूरत पड़ जाए। लेकिन तुम हो कि सुर्ती फाँकने और रोटी बनाने के सिवा दुनिया का कोई दूसरा काम नहीं सीखना चाहते।'

'अब इस बुढ़ापे मे कोई नया काम सीखने की लालसा नहीं रही बहूजी!' महराज ने कहा और नीची नजरे किए खड़ा रहा।

'अच्छा, मैं तार लिये आती हूँ।' लता ने कहा और बाहर की तरफ़ चल पड़ी।

महराज भी पीछे-पीछे चला गया। दरवाजा तो उसे ही बन्द करना होगा न!

तार का लिफाफ़ा लेकर लता भीतर आई। भाभी के पास पहुँच, लिफ़ाफा खोला और तार पढ़ा, तो प्रसन्नता से भर उठी। तार का फ़ार्म भाभी के हाथ पर धरते हुए कहा—'लो, पिताजी आ रहे हैं! माताजी भी साथ मे आ रही है।'

'और, आज ही साढे आठ बजे की गाड़ी से आ रहे है।' अलका ने तार पढ़ते हुए कहा—'लेकिन ·।'

'लेकिन क्या, भाभी!' लता ने कहा—'यही न कि भैय्या क्लब गए हैं। स्टेशन कौन जाएगा?'

'हाँ, बेटी!'

'फ़ोन जो लगा है भैय्या के कमरे मे। चलो, मैं अभी क्लब मे टेलीफ़ोन किए देती हूँ।'

'सो तो मैं भी जानती हूँ; लेकिन क्लब से कहीं दूसरी जगह चले गए होंगे तो?'

'तो फिर हम स्वय स्टेशन चलेगी।' और दोनों ही लीलाधर के बैठकखाने में जा पहुँचीं।

टेलीफ़ोन का रिसीवर हाथ मे उठाकर लता ने डायल के नम्बरो पर अँगुली घुमाते हुए क्लब का कनेक्शन ठीक किया। तत्काल किसी ने क्लब से कहा—'हलो ···आप कहाँ से बोलते है?'

'नंबर ३१७ से बोलती हूँ।'

'कहिए, क्या आज्ञा है?'

स्वर से ऐसा प्रतीत होता था कि क्लब का कोई चपरासी नहीं, बल्कि कोई संभ्रान्त सदस्य फ़ोन पर बोल रहा है।

'देखिए, फ़ोन पर श्री लीलाधर, डिप्टी कलेक्टर साहब को भेजने की कृपा कीजिए। मैं उनके घर से बोल रही हूँ।'

'अभी भेजता हूँ। वह इस समय शतरंज खेल रहे हैं।'

रिसीवर रखते हुए लता ने भाभी से कहा—'एक समस्या तो हल हुई। भैय्या अभी क्लब मे ही है। शतरंज खेल रहे हैं। फ़ोन पर उन्हे बुलाया है मैने!'

इसी बीच टेलीफ़ोन की घण्टी टनटना उठी।

'लो, फ़ोन पर भैया आ गए।' लता ने कहा और फिर रिसीवर उठाकर बाएँ कान से लगा लिया।

'हलो।'

'भैया बोल रहे हैं?' लता ने पूछा।

'हाँ-हाँ; क्या बात है लता?' लीलाधर ने फ़ोन पर कुछ व्यग्रता के साथ पूछा—'सब खैरियत तो है?'

'लखनऊ से तार आया है। पिताजी आ रहे हैं, माताजी के साथ—आज ही साढे आठ बजे की गाड़ी से।'

'अच्छा, मैं फ़ौरन घर आया। अभी सवा सात बजा है। हम सब स्टेशन चलेंगे। तुम लोग तैयार रहो!'

'अच्छा!' लता ने रिसीवर फ़ोन पर रखते हुए कहा। फिर भाभी की ओर मुखातिब होकर कहा—'भैया आ रहे हैं। कहते हैं, तुम लोग तैयार रहो। हम सब स्टेशन चलेंगे।'

'तो चलो, हम अपने कपड़े बदल लें।' अलका ने कहा—'और महराज को भोजन तैयार करने की सूचना दे दें।'

'हाँ, यह तो करना ही होगा। लता ने कहा, और भाभी के साथ भीतर कमरे की तरफ़ कदम बढ़ा दिए।

रसोई-घर मे जाकर अलका ने कहा—'देखो महराज, गोरखपुर से माताजी आ रही हैं, पिताजी भी साथ मे हैं। थोड़ी-सी खीर

बना डालो। रायता भी तैयार कर लो। पूड़ी-कचौड़ी रहेगी ही। कोई जल्दी नहीं है। नौ बजे तक हम लोग स्टेशन से लौटेंगे।'

'हाँ, दस बजेगा खाते-पीते।' लता ने कहा—'तब तक तो महराज पचास तरह का भोजन तैयार कर सकते है।'

महराज अपनी प्रशसा सुनकर फूल उठा, कहा—'हाँ-हाँ, मैं सब तैयार कर लूँगा। आप चिन्ता न करें।'

इसके बाद ननँद-भाभी ने अपने कपड़े बदले और तैयार होकर बैठक मे दोनों जा पहुँचीं। पाँच मिनट भी इन लोगों को नही बैठना पड़ा कि हार्न बजाती लीलाधर की कार बँगले के सामने आ पहुँची।

लता ने कार के निकट जाकर लीलाधर से पूछा—'आप नाश्ता करेंगे, भैया? शायद देर हो जाए लौटने मे। गाड़ी का क्या ठिकाना कि ठीक समय पर आती है या नहीं।'

'नहीं, नाश्ता करने की इच्छा नहीं है।' लीलाधर ने कहा—'यदि गाड़ी लेट हुई तो स्टेशन पर ही चाय पी लेंगे। तुम लोग तैयार हो गईं?'

'हाँ।'

'तो फिर चलो।'

'भाभी को लेकर अभी आई।' कहकर लता बैठक मे गई और भाभी के साथ आकर कार मे जा बैठी।

लीलाधर सामने की सीट से उठकर पिछली सीट पर ही इन दोनों के साथ आ बैठा। शोफ़र ने आज्ञा पाकर गाड़ी स्टार्ट कर दी।

'दिवाली के समय पिताजी ने आने का वचन दिया था न!' लीलाधर ने कहा—'लेकिन पहले से कोई पत्र न भेजा उन्होंने?'

'शायद छुट्टी मिलने में कुछ देर हो गई होगी।' अलका ने कहा।

'यही बात होगी, तभी आज अचानक तार भेजा है।' लता ने कहा।

'जो भी हो, पिताजी आ रहे है, और साथ में माताजी भी है, यह हम लोगो के लिए अपूर्व प्रसन्नता की बात है!' लीलाधर ने कहा।

'पिताजी को तो अब नौकरी करनी नही चाहिए।' अलका ने कहा—'बुढापे मे आराम से हम लोगों के साथ रहे।

'भैया तो यह बात कई बार कह चुके हैं, लेकिन पिताजी कहते है कि दो वर्ष अभी और नौकरी करेंगे। पेंशन मिलने पर ही वह नौकरी छोड़ेंगे।' लता ने कहा!

'बैठे-बैठे इन सयाने लोगों का समय नहीं कट सकता, लता!' लीलाधर ने कहा—'ज़िन्दगी भर काम करते-करते ये लोग आराम से नफ़रत करने लगते हैं।'

'लेकिन नई पीढ़ीवाले आरामतलब होते हैं।' अलका ने परिहास किया—'आप लोगो का वश चले तो दिन-रात आराम से पड़े रहे या क्लब मे चहकते रहे।'

'तुम भी तो नई पीढी की हो!' लीलाधर ने मुसकराते हुए कहा—'लेकिन तुम आराम-तलबी से क्यों नफ़रत करती हो?'

'नफ़रत कहाँ करती हूँ।' अलका ने कहा—'यह बात दूसरी है कि आप जितना चाहते है, उतना आराम मुझे पसन्द नहीं।'

'तो फिर तुम्हारी बात अपने-आप कट गई।' लता ने बीच में ही कहा—'आराम अथवा काम करना व्यक्तिगत स्वभाव की बात है, भाभी!'

अब तक कार स्टेशन पहुँच चुकी थी और शोफ़र कार से उतर कर खड़ा हो गया था—शायद अपने स्वामी की आज्ञा की राह देखने लगा था।

लीलाधर सपरिवार कार से उतर पड़ा। स्टेशन की तरफ़ कदम बढ़ाने के पहले शोफर से कहा—'साढे आठ बजे वाली गाड़ी से मेरे पिताजी आ रहे है। उन्हें लेकर हम लोग घर चलेंगे।'

'अच्छा सरकार!' शोफर ने कहा और कार के पास खड़ा रहा।

प्लेटफार्म-टिकट लेकर लीलाधर प्लेटफार्म पर गया और यह जानकर लता तथा अलका को प्रसन्नता हुई कि लखनऊ की गाड़ी ठीक समय पर आ रही है।

२२

यह पहला मौका था, जब लीलाधर के माता-पिता उसके पास लखनऊ आए थे ! स्टेशन से आकर बहुत देर तक सब लोग बैठक मे बैठकर इधर-उधर की बाते करते रहे। आपस की बातें जब खत्म हो चुकीं, तो देश की साम्प्रदायिक स्थिति पर बाते चलने लगीं। इसी प्रसंग मे कलकत्ते की अमानुषिक घटनाओं का भी ज़िक्र छिड़ गया और रेखा की आहुति का भी लता ने उल्लेख कर दिया।

लीलाधर की माँ ने रेखा के करुण निधन पर अनायास गीली हो उठनेवाली अपनी आँखों को आँचल के एक छोर से पोंछते हुए कहा—'बेचारी रेखा ! कितनी सरल और सुशील थी !'

'मैं समझता हूँ', लीलाधर के पिता ने कहा—'लीलाधर के साथ उसका विवाह-प्रस्ताव जबसे तुमने अस्वीकृत कर दिया था, तभी से उसके जीवन मे एक मोड़ आ गया था।'

'इसीलिए तो मुझे दुःख हो रहा है।' लीलाधर की माँ ने कहा—'यदि उसके जीवन मे यह मोड़ न आता, तो शायद इस प्रकार उसका

दयनीय अन्त न होता। लेकिन भाग्य की रेखाओं को कौन मेट सकता है? यों कहना चाहिए कि भावी बडी प्रबल होती है। यदि रेखा के साथ सामाजिक उदारता की भावना मे बहकर मैं लीलाधर का विवाह करना स्वीकार कर लेती, तो अलका जैसी रूपपरी और स्नेहशीला बहू हमे कहाँ मिलती? यह तो हमे मानना होगा कि रेखा और अलका दोनों एक-दूसरी से बहुत भिन्न है। शिक्षा मे दोनों एक-दूसरी से कम नहीं; लेकिन जो शील अलका बहू मे है, वह रेखा मे नहीं था।'

अलका अपनी प्रशंसा सुनकर मन-ही-मन प्रसन्नता का अनुभव कर रही थी। तभी लता ने कहा—'रेखा के दयनीय अन्त का कारण उसके जीवन का मोड नहीं है, माँ। कलकत्ते मे वह देश-सेवा की भावना लेकर थोडे ही गई थी। वहाँ तो वह अपनी किसी सहेली के घर गई थी। दुर्भाग्य की बात कि उसी समय वहाँ साम्प्रदायिकता की ज्वालाएँ धू-धूकर जल उठीं।'

'यही बात है, माँ!' लीलाधर ने कहा—'तुम अपना मन मैला न करो। तुम्हारे निश्चय के कारण रेखा के जीवन मे एक मोड़ अवश्य आ गया था; लेकिन उसकी मृत्यु का कारण यह नहीं है।'

'तब मुझे सन्तोष है, बेटा!' माँ ने कहा—'मुझे इसलिए पश्चात्ताप हो रहा था कि उसकी मृत्यु के लिए परोक्ष रूप से शायद मैं ही दोषी हूँ।'

'नहीं, यह बात तुम अपने मन में भूलकर भी न लाओ, माँ!' लीलाधर ने कहा—'अच्छा लता, भोजन तैयार हो, तो खाने-पीने की तैयारी करो अब।'

'भोजन तैयार है। महाराज एक बार खबर देने आया था, लेकिन बातचीत चल रही थी, इसीलिए मैंने उसे चुप रहने का इशारा

कर दिया था। आप लोग हाथ-मुँह धोकर तैयार हों, मैं थाली परोसने के लिए महराज से अभी कहती हूँ।'

और, खाते-पीते साढे ग्यारह बज गए। फिर कोई बात नहीं हुई। सब अपने-अपने बिस्तर पर जाकर सो रहे।

सबेरे चाय पीते समय लीलाधर के पिता ने कहा—'पंकज के पिताजी इधर मेरे पास आए थे, लीलाधर! कह रहे थे कि उन्हे तो पकज के विवाह की कोई जल्दी नहीं है, लेकिन पंकज की माँ का आग्रह है कि विवाह इसी वर्ष मई या जून तक कर दिया जाए।'

'एक वर्ष भी नहीं ठहर सकतीं वे?' लीलाधर ने प्रश्न किया।

लता ने अपने विवाह की चर्चा सुनी, तो वह जल्दी-जल्दी चाय पीकर उस कमरे से हट गई। मन-ही-मन उसे बडी लाज लगती है अपने विवाह की चर्चा चलने पर।

'कहते है, उनका स्वास्थ्य इधर खराब रहने लगा है। इसीलिए वह जल्दी मचा रही है।'

'तब आपने क्या कहा?'

'कह दिया है कि लखनऊ से लौटकर हम अपना निश्चय बतला सकेंगे।'

'मैं समझता हूँ, जब हमे पंकज से अच्छा वर अब तक दूसरा नहीं नजर आ रहा है, तब अधिक दिनों तक इस बात को टालना नहीं चाहिए। पंकज की जिस उग्र प्रवृत्ति की मुझे आशका थी, वह भी इस एक वर्ष मे दूर हो गई। राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत रहना किसी भी भारतीय तरुण के लिए आज स्वाभाविक होना चाहिए। हाँ, गलत राह पर बिना सोचे-समझे कदम बढ़ाना मैं ठीक नहीं समझता। मुझे प्रसन्नता है कि पंकज को इस बीच मैंने कभी ग़लत राह पर चलते नहीं देखा। अगले वर्ष तक वह वकालत भी पास कर लेगा। मेधावी

छात्र है। मैं उसके संबंध मे बहुत-कुछ पता लगा चुका हूँ। आप मई-जून मे ही विवाह करना स्वीकार कर लीजिए।'

'जब तुम्हारी स्वीकृति है, तो दो-एक दिन मे यहीं से पंकज के पिता को पत्र क्यों न लिख दिया जाय?'

'हाँ, लिख दीजिए।'

और अलका ने फौरन जाकर लता को यह खबर सुना दी—'लो, बिटिया! इसी साल गर्मी के दिनों मे अपने साजन के घर पहुँच जाओगी।'

'नारी होकर एक दिन सभी को किसी दूसरे घर जाना पड़ता है, भाभी! माता-पिता अथवा भाई-भाभी के घर वह आजीवन रहना भी चाहे; तो समाज उसे हरगिज न रहने देगा। दुनिया भर की आलोचनाएँ उसे सुननी पड़ेंगी! सर्वथा नवीन घर को ही उसे अपना घर बनाना पड़ता है, भाभी!'

'आज बहुत समझ की बाते कर रही हो, बिटिया।' अलका ने कहा—'मैं तो समझ रही थी कि तुनक उठोगी मेरी बात सुनकर।'

'चन्द दिनों की मेहमान हूँ, भाभी! अब तुनक उठना मैं ठीक नहीं समझती।'

अलका ने लता को अपने वक्ष से चिपकाते हुए कहा—'तुम्हे जीवन-भर इस घर मे और मुझसे तुनक उठने का अधिकार है, बिटिया! ऐसी बाते अब कभी न करना।' और लता के बिछोह का अनुमान करते हुए अलका की आँखो से आँसुओं की कुछ बूँदे उसके मस्तक पर टपक पड़ीं।

इसी बीच लता की माँ आ गईं वहाँ, और ननँद-भाभी का यह सम्मिलन देख मुसकरा उठीं। शायद वे समझ गईं कि अलका बहू लता बेटी को उसके विवाह का समाचार सुना चुकी है।

माँ को देखकर ननँद-भाभी दोनो ही जैसे किसी लज्जा से भर

उठीं। क्या कहती होंगी माँ! लेकिन माँ ने फौरन दूसरी बात छेड़कर इनकी लज्जा को वहीं तिरोहित कर दिया; कहा—'बहू, कभी गोमती में स्नान करने जाती हो या नहीं?'

'कभी-कभी चली जाती हूँ, माँ!' अलका ने कहा—'लेकिन छठे छः मासे ही जा पाती हूँ।'

'तुम जाना चाहती हो माँ?' लता ने प्रश्न किया।

'हाँ, बेटी!'

'मैं अभी भैया से कहती हूँ।' लता ने कहा—'शोफ़र आ चुका होगा अब तक। मोटर से चलेंगे, तो जल्दी लौट आएँगे।' और लता ने जाकर अपने भैया से माँ का प्रस्ताव कह दिया।

लीलाधर अपने इजलास की फ़ाइलों मे उलझा था। अतः उसे छोड़, सब लोग मोटर मे बैठकर गोमती-स्नान के लिए चले गए।

पिताजी के आ जाने से, लीलाधर को रेखा का निधन-समाचार पढकर जो पीड़ा होने लगी थी, वह बहुत-कुछ कम हो गई। माता, पिता, पत्नी और बहिन की उपस्थिति से घर का वातावरण ऐसा-कुछ रहता कि लीलाधर को वह एकान्त अप्राप्य था, जिसमे किसी प्रियजन की स्मृतियाँ हृदय-प्रदेश पर बादलों की तरह मँडराने लगतीं और आँखों की राह बूँदें बनकर बरसने लगती है।

इजलास मे जाता, तो वहाँ का वातावरण भी ऐसा रहता कि रेखा की स्मृति को उभरने का मौका ही न आने पाता। इसी तरह क्लब का वातावरण सदा नवीन रंगीनियों से ओतप्रोत रहता।

इसी तरह लगभग पन्द्रह दिन सरक गए। इस बीच लीलाधर के पिता ने एक पुरोहित की सहायता से लता के विवाह की तिथियाँ निश्चित करके, पंकज के पिता को गोरखपुर लिख भेजीं। उनकी स्वीकृति भी आ चुकी है।

ऐसी व्यस्त घड़ियों मे भी लीलाधर आजकल अपेक्षाकृत अधिक

प्रसन्न है। आज सुबह अपने बैठकखाने मे इजलास की फाइलों मे जब वह उलझ रहा था, तभी दरबान ने सबेरे की डाक लाकर लीलाधर की मेज पर रख दी।

सरकारी डाक को देखने के पहले ही लीलाधर की नजर एक लम्बे-से लिफाफे पर पड़ी। उस पर लिखे पते की लिपि को देखकर वह चौक उठा। यह लिपि तो रेखा की प्रतीत होती है! तो क्या रेखा ने यह पत्र तब लिखा होगा, जब वह जीवित रही होगी? लेकिन इतने दिनो बाद यह पत्र उसे प्राप्त हो रहा है? डाक विभाग की लापरवाही पर उसे एक खीझ हो उठी। धड़कते हृदय से उसने लिफाफा खोला। नोआखाली से यह पत्र लिखा गया है। तारीख अभी हाल की और भेजनेवाली रेखा ही है। ओह! तब रेखा जीवित है! एक अभूतपूर्व आह्लाद से लीलाधर उछल पडा। उत्सुकता से रेखा के पत्र को वह पढ़ने लगा :

"अखबारो मे मेरी मृत्यु का समाचार छप चुका है, अतः यह पत्र पाकर आपको महान् आश्चर्य होगा। मैं जानती हूँ, इस विशद् विश्व मे मेरे निधन पर आँसू बहानेवाला कोई आत्मीय नहीं है। लेकिन यह भी मुझे विश्वास है कि आपसे जो आत्मीयता मै पा सकी हूँ, उसके नाते आपको मेरा निधन-समाचार पढकर बहुत दुःख हुआ होगा। आपके इसी दुःख को कम करने के लिए मैं यह पत्र लिख रही हूँ।

"एक प्रकार से मेरी मृत्यु सचमुच हो चुकी है। एक शरीर छोड़-कर जब आत्मा किसी दूसरे शरीर मे प्रवेश कर लेती है, तभी उसकी मृत्यु समझी जाती है और उसका नया जन्म भी दूसरे शरीर के साथ हो जाता है। मेरा शरीर यद्यपि वही है, फिर भी मेरा पुनर्जन्म हुआ है। अब मेरे विचार सर्वथा बदल चुके हैं; मेरा कार्यक्षेत्र भी दूसरा हो चुका है।

"कलकत्ते मे तीन रक्त-रजित दिन रात अपनी सहेली के घर मे कैद रहकर जब मैंने बिता डाले और लुक-छिपकर छत के कमरों मे से झाँककर खुले आम सडकों पर अमानुषिक कृत्य देख चुकी, तब मेरे अन्तर की नारी एकदम विद्रोही हो उठी। इसी बीच एक दिन सन्ध्या के झुटपुटे में मेरी सहेली के घर के निकट ही चौराहे पर एक फ़ौजी लारी आ खड़ी हुई। पिछले तीन दिनों से मैं बराबर देखा करती थी कि यह फ़ौजी लारी आसपास के भयभीत नर-नारियों को, जो स्वय उस लारी तक सही-सलामत पहुँच जाते है, किसी सुरक्षित स्थान मे पहुँचा आती है। मौका देखकर मैं अपनी सहेली के परिवार के साथ इस लारी की तरफ़ बढ़ी; लेकिन ठीक इसी समय एक उत्तेजित मुसलिम भीड़ नारे लगाती हुई हम लोगो की तरफ़ झपटी। लेकिन हम लोग अब तक लारी पर चढ़ चुके थे और लारी वहाँ से कूच भी कर चुकी थी। पास-पड़ोस के सभी लोग उत्तेजित भीड़ का प्रलयकर रूप देखकर काँप उठे थे और भय के मारे दरवाज़े बन्द कर चुके थे। बाद मे मुझे पता चला है कि उस भीड़ ने मेरी सहेली का घर जला भी डाला था।

"ऐसी विकट और खूख्वार घड़ियों मे कौन, किसे बचा सकता था अथवा बखूबी यह देख सकता था कि कौन मरा और कौन बचा। इसीलिए अखबारों मे मेरे निधन का जो समाचार छपा है, उस पर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

"यह सब देखकर मेरा मन स्वभावतः बदल गया। मुझे लगा कि हमारे देश मे जब कुछ हिन्दू-मुसलमान—दोनों ही—एक-दूसरे के खून की प्यास से राक्षस बन चुके हैं, तब किसी भी प्रबुद्ध भारतीय को चैन और आराम की जिन्दगी बसर करने मे घोर लज्जा का अनुभव होना चाहिए। तभी मैंने निश्चय किया कि अब मैं प्रयाग वापस नहीं जाऊँगी। स्कूल मे अध्यापिका रहकर अथवा प्रयाग-कांग्रेस-कमेटी की

अपनी सेवाएँ देकर मैं जिस सीमित दायरे मे चक्कर काट रही थी, उससे मुझे बाहर कदम बढाना होगा । इसी निश्चय के अनुसार कलकत्ते मे पीड़ित मानव की सेवा करने मे मैंने कुछ उठा नहीं रक्खा ।

"लेकिन साम्प्रदायिकता की आग तो कलकत्ते के आसपास भी भयकर रूप मे फैल चुकी थी। नोआखाली मे भी वही सामूहिक धावे, खून-खराबी, आगजनी, लूटपाट और हिन्दू लड़कियो तथा स्त्रियों को जबरदस्ती मुसलमान बनाने की घटनाएँ घटने लगीं ।

"इन घटनाओ को लेकर महात्मा गान्धी का दिल द्रवित हो उठा। वे कलकत्ता आए और नोआखाली जाने की तैयारी करने लगे। मैं भी उनके पास पहुँची और अपनी सक्रिय सेवाएँ देने का प्रस्ताव रक्खा। महात्मा गान्धी ने सहर्ष मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

"अब मैं उनके दल के साथ नोआखाली के गाँवों मे जाकर लोगों को स्वावलम्बन का मार्ग दिखाने और यथासम्भव पीड़ित मानव की सेवा करने मे अपना समय लगा रही हूँ। यहाँ का कार्यक्रम बड़ा महत्त्वपूर्ण और लम्बा है। समय-समय पर मैं पत्र भेजने की चेष्टा करती रहूँगी।

"बहिन लता और अलका के साथ आपको सादर अभिवादन।

आपकी,

रेखा"

लीलाधर ने भीतर जाकर रेखा का पत्र लता को देते हुए कहा—'रेखा जीवित है, लता! नोआखाली मे महात्मा गान्धी के साथ पीड़ित मानव की सेवा कर रही है। यह लो उसका पत्र।'

"जीवित है! भगवान् की माया निराली है!" लीलाधर की माँ ने प्रसन्नता के आवरण मे कहा।

'मैं तो पहले ही कह रही थी, भैय्या !' लता ने उछलते हुए कहा।

'अब उसे लता के विवाह मे बुलवाने का खयाल रखना, लीलाधर !' माँ ने कहा।

'जरूर बुलवाऊँगा, माँ !' लीलाधर ने कहा और अपनी बैठक की तरफ़ लौट गया।

लता और अलका ने रेखा का पत्र बार-बार पढ़ा और अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव किया।

२३

समय जाते देर नहीं लगती। लता का विवाह लखनऊ से ही हो रहा है। यों तो गोरखपुर मे भी यह विवाह हो सकता था; लेकिन लीलाधर ने ऐसा करना ठीक नहीं समझा। लखनऊ मे वह डिप्टी कलेक्टर है। यहाँ उसके दबाव से वाञ्छनीय सामग्री एकत्र करने मे जो सुविधाएँ सहज-सुलभ है, वे गोरखपुर मे संभव नहीं।

लीलाधर का बँगला निमन्त्रित मेहमानों और नाते-रिश्तेदारों से खचाखच भरा हुआ है। अपनी एकमात्र बहिन लता के विवाह मे लीलाधर हाथ खोलकर खर्च कर रहा है। प्रत्येक आगत व्यक्ति की समस्त संभाव्य सुविधाओं का पूरा-पूरा खयाल रक्खा गया है।

आगत मेहमानों मे रेखा की उपस्थिति से लीलाधर का सारा परिवार अमित आनन्द का अनुभव कर रहा है। इसका एक कारण है : पहले तो रेखा के आने की बहुत कम आशा थी; दूसरे उसके जीवन मे जो विपर्यास आ गया है, उसके लिए लीलाधर का परिवार ही अपने-आपको उत्तरदायी समझता है। ऐसी दशा मे जब रेखा

नोआखाली से अपना काम छोड़कर लता के विवाह में आकर सम्मि-लित हुई, तो इस परिवार का प्रसन्न होना सर्वथा स्वाभाविक है।

महात्माजी के दल के साथ रेखा नोआखाली में अपना काम कर रही थी। लेकिन लता के विवाह का निमंत्रण पाकर उसे लखनऊ आना ही पड़ा। लीलाधर की जो आत्मीयता उसे प्राप्त है और लीलाधर के प्रति प्रारम्भ से ही रेखा का जो स्नेह है, उसकी अवज्ञा करने का साहस उसमे नहीं था। इसीलिए एक सप्ताह का समय निकालकर अपनी सहेली लता के विवाह मे वह सम्मिलित हो गई।

लीलाधर और उसके परिवारवालों को यह आशा थी कि लता का विवाह हो जाने पर रेखा दस-पन्द्रह दिन उनके यहाँ अवश्य रहेगी। विवाह की भीडभाड़ मे कभी दस मिनट बैठकर लीलाधर कोई बात भी तो नहीं कर सका इस रेखा से। लेकिन लता को विदा होने के दस-बीस मिनट पहले ही यह देखकर सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि रेखा अपना सूटकेस बन्द कर चुकी है और बिस्तर बाँधकर जाने की तैयारी कर चुकी है।

लता का सारा शृंगार हो चुका था। सहन मे एक सजे-सजाए पलग पर लता का पति पकज, हाथ मे कंगन और सिर पर मौर बाँधे बैठा शायद इस प्रतीक्षा मे था कि सजी-सजाई नव-वधू कब उसके पार्श्व मे आकर उसके अपने घर की ओर कदम बढ़ाती है कि इसी बीच रेखा ने लता के निकट पहुँच, ढाई हजार के नोट उसके हाथों पर रखते हुए कहा—'बहिन, तुम मुझसे छोटी हो। इस दुनिया मे मेरा कोई नहीं, जिसे मैं अपने जीवन की यह कमाई देकर अपने-आपको धन्य समझ सकूँ। मैं चाहती थी कि सोने का हार तुम्हे भेंट करती। लेकिन इतना समय नहीं था कि प्रयाग मे दो-एक दिन ठहर

कर हार बनवा सकती। तुम अपनी पसन्दगी का हार बनवा लेना और इस रेखा को कभी-कभी याद करती रहना।'

'लेकिन ।' सजी-सजाई नव-वधू लता ने कहा।

'लेकिन-वेकिन की जरूरत ही नहीं, बहिन !' और रेखा ने लता को अपने वक्ष से लगा लिया।

इस बीच लता की माँ ने लीलाधर को सहन से भीतर बुलवा लिया था और रेखा के दिए हुए नोटों की गड्डी का उल्लेख कर दिया था।

लीलाधर ने कहा—'आत्मीयता का प्रमाण देने के लिए रुपए देने की जरूरत नहीं है, रेखा !'

लीलाधर की माँ मन-ही-मन इस रेखा की गम्भीरता और आत्मीयता की कायल हो उठीं और उसकी वन्दना करने लगीं। उनकी आँखे भी गीली हो उठी थीं। सिर्फ इतना कह सकीं—'रेखा बेटी ! लता को रुपयों की जरूरत नहीं है ! वह तो तुम्हारा स्नेह पाकर ही धन्य है।'

'मैं जानती हूँ कि लता को रुपयों की ज़रूरत नहीं, माँ !' रेखा ने अपनी गीली आँखों की पलको को उठाते हुए कहा—'लेकिन देने-वाले का दिल तोड़ने की भी अब जरूरत नहीं रही !'

'तुम ग़लत समझ रही हो, बेटी ?' लीलाधर की माँ ने शायद प्रायश्चित की भावना से कहा—'मैं जानती हूँ कि इस दुनिया मे सबसे पहले मैंने ही तुम्हारा दिल तोड़ा था, बेटी ! लेकिन भावी का खेल मानव को पुतले की तरह खेलना ही पड़ता है। अब कभी भूल-कर भी तुम्हारा दिल तोड़ने की धृष्टता मैं नहीं कर सकती।'

'लेकिन रेखा !' यह लीलाधर का स्वर था—'तुम अपने जीवन मे अकेली हो। रुपयों की ज़रूरत तुम्हें कभी-न-कभी पड़ सकती है।

इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम अपने जीवन की कमाई यों मत लुटाओ।'

'लुटानेवाले के सन्तोष को आप नहीं समझ सकते!' रेखा ने कहा—'मुझे अब रुपयो की जरूरत नहीं रही। आगे भी शायद जरूरत न पडेगी। जिसे अविवाहित ही रहना है, और पीडित मानव की सेवा मे ही अपना जीवन बिताना है, उसे रुपयो की क्या जरूरत?'

'लेकिन ।'

'लेकिन आपको शायद सन्देह है कि नारी होकर मैं आजीवन अविवाहित न रह सकूँगी और कभी-न-कभी मुझे रुपयों की जरूरत पड़ सकती है।' रेखा ने लीलाधर को स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा—'कोशिश तो मैं यही करूँगी कि सदा अविवाहित रहकर पीड़ित मानव की सेवा में अपने-आपको खपा डालूँ। लेकिन यदि यह सम्भव न हुआ—जीवन और कर्त्तव्य के इस प्रवाह मे अन्त तक सफलतापूर्वक न बह सकी, तो अपने-जैसे किसी सेवाव्रती से विवाह भी कर लूँगी। अच्छा, अब मुझे स्टेशन पहुँचाने की व्यवस्था कर दीजिए।'

'लता की बिदा हो जाने तक नहीं रुकोगी?' लीलाधर ने शायद अनुरोध के आवरण मे कहा।

'नहीं!' रेखा ने कहा—'छोटी बहिन की बिदा का दृश्य और आँसुओं की गगा-जमुना का प्रवाह देखने का मुझमे साहस नहीं।'

लीलाधर ने बाहर जाकर शोफर को हिदायत दी कि रेखा को कार मे ले जाकर स्टेशन भेज आवे और टिकट आदि लेकर गाडी पर बैठा आवे। एक-दूसरे नौकर से रेखा का सामान उसके कमरे से लाकर कार पर रखने की बात भी लीलाधर ने कह दी, और पुनः भीतर चला गया।

भीतर पहुँचकर लीलाधर ने देखा कि रेखा को उसका सारा परि-

बार अपने गले लगा रहा है। अलका, लता और लीलाधर की माँ सभी की आँखों से आँसुओं की बूँदें टपाटप गिर रही हैं।

'कार तैयार है, रेखा!' लीलाधर ने कहा।

और, सभी ने गीली आँखों के बीच रेखा को बिदा दी। दरवाजे पर पहुँचकर रेखा जब कार पर बैठ गई, तब लीलाधर की आँखें भी सहसा गीली हो आईं और रेखा का एक हाथ अपने दोनों हाथों से दबाते हुए उसने कहा—'लता की बिदा का समय हो रहा है, रेखा! मुझे हार्दिक दुःख है कि मैं स्टेशन तक तुम्हारे साथ भी नहीं चल सकता!'

'इस जीवन-प्रवाह में जब हम और आप साथ-साथ नहीं बह सके, तब स्टेशन तक चलने से ही क्या होगा? कभी-कभी पत्र लिखकर मेरा स्मरण कर लिया करें, यही मेरे लिए बहुत बड़ी बात होगी।' और लीलाधर के हाथों पर रेखा की आँखों से आँसुओं की कई बूँदें एक साथ ही टपक पड़ीं।

आँसुओं की गर्म बूँदों के स्पर्श से लीलाधर को जैसे सतर्क हो जाना पड़ा। विवाह की भीड़भाड़ का उसे खयाल आ गया और अपने हाथ रेखा के हाथ से हटाते हुए उसने कहा—'अच्छा, अब जाओ रेखा, तुम्हारी गाड़ी का समय हो रहा है।' और शोफर को गाड़ी स्टार्ट करने का संकेत कर लीलाधर कार से हटकर दूर खड़ा हो गया।

सजल आँखों से लीलाधर ने देखा कि रेखा आज किसी तीव्र लहर की भाँति उससे बहुत दूर जा रही है—इतनी दूर कि पता नहीं, इस जीवन में फिर कभी उससे भेंट होगी या नहीं।